कल्याण-मार्ग

अध्यात्म - प्रचार - परिषद

कल्याण-मार्ग-प्रकाशन—१

कल्याण-मार्ग

प्रौढ़ों तथा जिज्ञासु विद्यार्थियों के लिये तथ्य-तत्व चिन्तन

लेखक

रामदास मिश्र 'विजय'

संस्थापक तथा संचालक

अध्यात्म प्रचार परिषद्

प्रकाशक

हिन्दी प्रचारक मंडल

लखनऊ

प्रकाशक
रामदास मिश्र
हिंदी-प्रचारक-मंडल
कैलाश-भवन, घसियारी मण्डी
लखनऊ

प्रथम संस्करण
संवत् २०१४
दक्षिणा १।)
१ रुपया २५ नये पैसे

मुद्रक
बजरंगबली 'विशारद'
श्री सीताराम प्रेस,
जालिपादेवी, वाराणसी।

उत्तर प्रदेश सरकार के

शिक्षा, गृह, एवं सूचना मन्त्री

माननीय श्री पं० कमलापति त्रिपाठी

की

शुभ कामना

प्रस्तुत पुस्तक (कल्याण-मार्ग) में आध्यात्मिक चिन्तन की सामग्री तथा जीवन में व्यवहार करने योग्य अनेक धर्मानुमोदित सूत्रों का संकलन है। इस भौतिकता ग्रस्त तथा विज्ञान वादी युग में आध्यात्म-प्रचार-परिषद् लखनऊ के संस्थापक श्री रामदास मिश्र ने इसका प्रकाशन कर उचित कार्य ही किया है इसमें संदेह नहीं।

मेरी शुभ कामना उनके साथ है।

विधान भवन
लखनऊ सितम्बर १९५८

कमलापति त्रिपाठी

कल्याण का राजपथ

कल्याण का मार्ग एक है। वह भौतिक नहीं आध्यात्मिक है। भारतीय संस्कृति का यह एक महान् संदेश है। भौतिकवाद की वर्तमान चकाचौंध में जबकि आज का विश्व अपने सुख शान्ति को खोकर भय, हिंसा और विनाश के काले बादलों को आगे बढ़ता देख रहा है; आध्यात्म-प्रचार परिषद् के संस्थापक पं० रामदास मिश्र लिखित यह पुस्तक 'कल्याण-मार्ग' संक्षेप में उसे सुख शान्ति और उन्नति के उसी पथ को सफलता पूर्वक दिखाती है जिसे पाकर कभी यह विश्व धन्य हो गया था। आज फिर आध्यात्म-चेतना का अंकुर जब तक जन-जन के मानस में अंकुरित नहीं होगा तब तक सुख, शान्ति और जीवन की सफलता असंभव है। अतएव हमारा कर्तव्य है कि हम इसे अवश्य पढ़ें, चिंतन करें और हृदयंगम करने के पश्चात् जीवन में उतारें; जिससे कि आज का व्यक्ति बदले, और व्यक्ति से राष्ट्र तथा विश्व बदल सके। इस पुस्तक में लिखी हुई बातें सबके हित की हैं अस्तु यह सबकी आचार-संहिता है।

—रमाकान्त मिश्र
एम.ए., साहित्यवाचस्पति
प्रधान संपादक
प्रकाश

२३-१०-१९५८
प्रकाश कार्यालय
अमीनाबाद, लखनऊ

आशीर्वचन

कल्याण-मार्ग कल्याण-मार्ग में
सब को शीघ्र बढ़ायेगा।
अध्यात्म चेतना का अंकुर
उर उर में शीघ्र जगायेगा।

—आशुकवि पं० राधाकृष्ण शास्त्री 'विमलेश'
उपदेशक-कथावाचक (नैमिशारण्य)

समर्पण

भारत सरकार के प्रधान मन्त्री

जननायक पं० जवाहरलाल नेहरू

को

हे ब्राह्मण कुल के उदित भानु,
हे नेहरू कुल के अमर रत्न।
हे स्वतंत्रता के पथ-दर्शक,
स्वीकार करो मेरा प्रणाम।

श्रद्धेय—

आध्यात्मिक तत्वों के चिन्तन की यह पुस्तक
आपको सादर समर्पण करते हुए—

समस्त

मानव समाज को

अर्पित करता हूँ।

क्यों ?

इसलिये कि—

नहीं कर्म बिन किये, कर्म का बन्धन कटता।
प्रकृति कराती कर्म, कोई इससे कब हटता।
यही कर्म का त्याग, कर्म के संग न जाना।
फल की इच्छा छोड़ सदा कर्तव्य निभाना।

—रामदास मिश्र

अपनी बात

गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों में—

रुद्र देह तजि नेह बस-
शंकर भे हनुमान।
पुरखा से सेवक भये-
हर से भे हनुमान।
(दोहावली)

सोहम्–रामदास मिश्र–राम (स्वामी) दास (सेवक) मिश्र (मिला हुआ) अर्थात् स्वयंसेवक, माता श्रीगोमती देवी पिता श्रीगजोधरप्रसाद मिश्र जन्मभूमि ग्राम गेरुहा पोस्ट शिवथाना ज़ि०–सीतापुर (उत्तरप्रदेश) कार्यक्षेत्र–जन्मभूमि से लखनऊ, लखनऊ से समस्त भारतवर्ष भावनात्मक यदि हो सके तो समस्त विश्व।

ध्येय—

मेरे जीवन का ध्येय यही, दुनियाँ यह पावे सत्य रूप।
अब राज्य न्याय का जग में हो, अन्याय का मिट जावे स्वरूप।
शुभ कर्म सदा सब जग में हों, अब अशुभ का जग से मिटे रूप।
अब ऊँच नीच का राग न हो, मानव गण में हो साम्य रूप।
अब नष्ट घृणा हो उच्च राग हो, जग में विकसित हो सत्य रूप।
जो कुछ पवित्र वह सब कुछ हो, और मिटें मलिन के सभी रूप।
जो कुछ सुन्दर वह विकसित हो, क्षय हों कुत्सित के सब स्वरूप।
शुभ नियम सभी इस जग में हों, सब कुनियम के मिट जायें रूप।

अब सत्य न्याय सब जग में हो, कल्याण मार्ग का यही रूप।
मेरे जीवन का ध्येय यही, दुनिया यह पावे सत्य रूप।

इस ध्येय की पूर्ति के लिये सन् १९३६ ई० में हिन्दी प्रचारक मंडल की स्थापना लखनऊ में की। इसके द्वारा हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार का कार्य करते हुए पुस्तक प्रकाशन का कार्य किया और कर रहे हैं।

इस प्रकाशन का प्रारम्भ भी सन् १९३६ ई० में लखनऊ से हुआ था जब कि भारत रत्न पं० जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रपति मनोनीत किये गये थे और लखनऊ कांग्रेस महाधिवेशन में पधारे थे। उस समय आपके जीवन चरित्र को (हमारा राष्ट्रपति) के नाम से प्रकाशित कर हिन्दी प्रचारक मंडल लखनऊ ने अपने प्रकाशन का श्रीगणेश किया था और अब १९५८ में अध्यात्म प्रचार परिषद् की स्थापना करते हुए आध्यात्मिक तत्वों के प्रचार की दृष्टि से लिखी (कल्याण मार्ग) नामक पुस्तक को पं० जवाहरलाल नेहरू को ही समर्पण करते हुए समस्त मानव समाज को अर्पित कर रहा हूँ।

नेहरू के प्रति आकर्षण यह मेरी श्रद्धा की बात है। किसी लोभ लालच की नहीं। अंत में मैं उन सभी महानुभावों के प्रति, हृदय से आभारी हूँ जिनके लेखों-विचारों के सहारे इस (कल्याण-मार्ग) को तैयार कर सका हूँ।

—रामदास मिश्र

विषय-सूची

कल्याण-मार्ग

कौन क्या कह रहा है?

इसे समझिए और व्यवहार में लाने के लिए विचार कीजिए।)

राष्ट्रपति डा० श्री राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—

अहमदाबाद २ नवम्बर १९५७ को अखिल भारतीय भारत साधु समाज के वार्षिक सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति डा० श्रीराजेन्द्रप्रसाद ने कहा कि भौतिक दृष्टि से संसार इतनी उन्नति कर चुका है कि अब मानव भौतिकवाद से ऊब गया है। विज्ञान की प्रगति ने मानव को ऐसे चौराहे पर खड़ा कर दिया है जहाँ वह यह नहीं समझ पा रहा है कि दुःख का मार्ग कौन है, सुख का मार्ग कौन है। भ्रान्त मानव को मार्ग-प्रदर्शन के लिये आज नैतिक तत्त्वों के पुनः स्थापित होने की आवश्यकता है।

उपराष्ट्रपति डा० श्री राधाकृष्णन् ने कहा—

दिल्ली ५ नवम्बर १९५७ 'मानव के अन्दर भलाई और बुराई दोनों की संभावनाएँ बनी हुई हैं। वह चाहे

तो इस दुनियाँ को रहने योग्य बना सकता है और चाहे तो इसे नष्ट भी कर सकता है। हम युद्ध भी कर सकते हैं और शान्ति भी बनाये रख सकते हैं। ऐसी स्थिति में हमें मानव का कल्याणकारी पक्ष दृढ़ करना है। हमारे प्राचीन ग्रंथ बताते हैं किप्रत्येक व्यक्ति में जीवन और मृत्यु की शक्तियाँ निहित होती हैं। हम बाहरी चमक-दमक और सत्ता का अनुसरण कर मौत के रास्ते चलते हैं और सत्य और प्रेम का अनुसरण कर अमरता के मार्ग पर चलते हैं।

प्रधान मंत्री श्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा—

हमें अपने देश का मकान बनाना है, इसकी बुनियाद गहरी होनी चाहिये, बुनियाद यदि रेत की होगी तो जैसे ही रेत बह जायगी मकान भी बह जायगा। गहरी बुनियाद चरित्र की होती है। देश में जो काम हमें करने हैं वे बहुत लम्बे-चौड़े हैं उसके लिये मजबूत दिल दिमाग व अपने पर काबू रखने की ताकत चाहिए। ये बहुत सी बातें हमें सीखनी हैं, इन सबकी बुनियाद चरित्र है।

शिक्षा मंत्री मौलाना अब्दुल कलाम आजाद ने कहा—

कानून कितने ही बनाये जायें, मगर उनसे कोई मौलिक सुधार होने का नहीं क्योंकि कानून केवल हाथ-पाँव पकड़ता है, मन को नहीं...सबका यदि मन सुधर जायगा तो देश की तस्वीर ही सुधर जायगी।

ऋषिकेश के श्री स्वामी डा० शिवानन्द सरस्वती ने कहा–

हिन्दुस्तान को हमें फिर से राजा भरत का गौरव-मय भारतवर्ष बनाना होगा। वह एक बार पुनः विश्व-गुरु बनेगा। निःस्वार्थ एकता से ही हम इस कार्य को साध सकते हैं।...इस ध्येय की पूर्ति संघ-शक्ति से ही हो सकती है।...साधु और संन्यासी का जीवन विश्व के कल्याण और मंगल के हेतु है। मानवता के आत्मिक विकास एवं विश्व के आध्यात्मिक उत्थान के लिये उनको अपने निश्चित कर्तव्य का पालन करना होगा।

अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक, आचार्य श्रीतुलसी ने कहा–

...सामग्री के अभाव में जो कराहता रहे, वही उसे पाकर विलासी बन जाय यह उचित नहीं। संयम की साधना नहीं होती तब यह होता है। संयम का लगाव न गरीबी से है, न अमीरी से। इच्छाओं पर विजय हो—यही उसका स्वरूप है।

आध्यात्मिक उन्नति न केवल उच्चतम उन्नति है, परन्तु सर्वतोमुखी उन्नति है। इसमें अपना निज का हित व दूसरों का हित भी,...इसका लक्ष्य सामाजिक व राजनैतिक उन्नति से बहुत अधिक व्यापक है।

अखिल भारतीय सांस्कृतिक पुनरुत्थान परिषद् के सभापति गढ़मुक्तेश्वर के स्वामी कपिलदेवाचार्य ने कहा—

संसार चमत्कार को नमस्कार करता है। संयम-नियम

के पालन से जो नैतिक शक्ति उत्पन्न होगी, उस चरित्रबल के सामने सारा संसार मस्तक झुकावेगा। उसकी शक्ति राजशक्ति से कहीं बढ़कर होती है।

नैमिशारण्य के उपदेशक आशुकवि पं० राधाकृष्ण शास्त्री 'विमलेश' कथावाचक ने कहा—

आज जब संसार में भौतिक प्रदर्शनों द्वारा अपने आपको, देश को समुन्नत बनाने में सभी देशों के विद्वानों में होड़ सी लगी हुई है–भौतिक प्रसाधनों से विश्व को सच्चा कल्याण प्राप्त न हो सकेगा। केवल अध्यात्म ज्ञान (एकात्मवाद) द्वारा ही संसार में शांति स्थापना होगी।

अखिल भारतीय भारत साधुसमाज का प्रस्ताव—

अहमदाबाद में होने वाले सम्मेलन में ५ नवम्बर १९५७ को एक प्रस्ताव में साधु सम्मेलन की ओर से सरकार से शिक्षा संस्थाओं में सदाचार के नियमों, भारतीय दर्शन, और धर्म ग्रंथों को अनिवार्य करने की अपील की। इनके बिना सदाचार की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। देश की शिक्षा - पद्धति में आध्यात्मिकता और सदाचार के अध्ययन का अभाव है।

शास्त्र-वचन—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ (मनुस्मृति)

अर्थात् कुरुक्षेत्रादि देश समुद्भूत अग्रजन्मा द्वारा ही

पृथ्वी भर के समस्त मानवों को अपना-अपना चारित्र्य शिक्षणीय है। इस मनु-वचनानुसार भारत सदा से विश्व का आध्यात्मिक, सामाजिक, नैतिक एवं चारित्रिक शिक्षक रहा है।

सत्यमेव जयते

जहाँ सत्य है वहाँ ही जय है, वहीं विजय है।

संत कबीर साहेब ने कहा है कि—

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप॥

सत्य-प्राप्ति का मार्ग

अपने पूज्य श्रीगुरुदेव भगवान स्वामी नारदानन्द सरस्वती 'नैमिशारण्य' के शब्दों में—

मैंने दिल साफ करने का अस्पताल खोला है। आत्म-संयम हमारे अस्पताल का सिविल सर्जन है। सत्य हमारे अस्पताल की सर्वरोगहर औषधि है। परन्तु आपको एक ध्यान रखना होगा। सत्यरूपी परम औषधि का उपयोग आपके शरीर पर तभी हो सकता है जब कि आपके आमाशय में स्वार्थ रूपी जो मल है वह दूर हो जाय। इसे दूर करने के लिये परोपकार तथा सर्वभूत हिते रतः के एनीमा का प्रयोग आपको करना होगा।

जब स्वार्थ की निस्सारता एवं अस्थिरता का मनुष्य को पूर्ण ज्ञान हो जाता है, तभी वह उच्च और आदर्श जीवन को प्राप्त कर सकता है। जब उसे यह निश्चय हो जाय कि स्वार्थ-त्याग के बिना कोई मनुष्य आत्मिक सुख का अनुभव नहीं कर सकता, यथार्थ सुख स्वार्थप्रियता और विषय-भोग में नहीं है। जो कार्य निरे स्वार्थ से भरा है वह पाप का कार्य है। स्वार्थी मनुष्य में परोपकार के कार्य में प्रवृत्त होने की शक्ति ही नहीं रहती। स्वार्थी मनुष्य का हृदय संकुचित हो जाता है। उसकी आत्मा का विकास रुक जाता है। जिस देश के निवासियों में स्वार्थ की मात्रा अधिक बढ़ जाती है उस देश की दशा दिन-प्रतिदिन गिरने लग जाती है। यही कारण है कि आज हमारे देश में सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ है। इस हाहाकार का मुख्य कारण हमारे अन्दर स्वार्थपूर्ण मनोवृत्ति ही है। स्वार्थ ही पाप का मूल कारण है। दुनियाँ में कोई पाप कोई अत्याचार नहीं जो स्वार्थ से खाली हो। स्थूल शरीर में रोगों का जो स्थान कब्ज का है, मानसिक रोगों में वही स्थान स्वार्थ का है। स्वार्थ-रहित मानव शरीर पर ही सत्य रूपी परम औषधि का सफल प्रयोग हो सकता है।

सारी बुराइयों की जड़ स्वार्थी मन के अन्दर है। आज मानवता अशान्त है, जिधर देखो वहाँ दुःख और अहंकार ही का एक छत्र शासन है। ऐसा क्यों, उसका

कारण है हमारा एकमात्र स्वार्थ। पाप न जमीन के अंदर है और न आसमान के ऊपर, न हवा में, न पानी में, न रात में और न दिन में, वह तो स्वार्थी मनुष्य के अन्दर निवास करता है। स्वार्थ और सत्य का घोर विरोध है, जहाँ स्वार्थ है वहाँ सत्य कहाँ. और जहाँ सत्य है वहाँ स्वार्थ का क्या काम ? स्वार्थ सांसारिक भ्रम है। स्वार्थी व्यक्तिगत सुख-भोग को सर्वोपरि मानता है। स्वार्थ, द्वेष और घृणा का उत्पादक है। स्वार्थ ही संसार में अन्याय और अत्याचार करता और कराता है। स्वार्थ का परित्याग करते ही मनुष्य देवता बन जाता है। 'देना' हमारे देश का धर्म है। आप अपने लिये न जियो, संसार के लिये जियो। जो कुछ तुम्हारे पास है, दे दो। दान का फल बड़ा मधुर होता है, दानी को कभी पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता। वह अपना धन लुटाता नहीं किन्तु सञ्चय करता है। वह प्राकृतिक धन देकर आध्यात्मिक धन मोल लेता है। यह एक ऐसा रहस्य है जिसको सच्चे त्यागी और उदार दानी ही समझ सकते हैं।

दान की भावना निःस्वार्थ हृदय से ही जाग्रत हो सकती है और हृदय की निर्मलता सत्यान्वेषण से प्राप्त होती है। इसीलिये मैं कहता हूँ, अपने दिल को सत्य के साबुन से धो डालो। अपनी प्रत्येक कामना को जो सत्य के विरोध में है उसको नष्ट कर दो। ऐसा करने से तुम्हारा

आत्मिक विकास होगा। इसलिये अपने अन्तःकरण को ऐसा स्वच्छ और पवित्र बनाओ जिससे सच्चिदानन्द भगवान की कृपा के पात्र बन जाओ। अपने दैनिक जीवन को पाप कर्मों से बचाओ और छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष आदि मल विक्षेपों को अपने समीप न आने दो। सत्य - प्राप्ति का केवल यही मार्ग है, अन्य कोई नहीं। अहं और सत्य में विवेक करना सीखो, अहं पापों और स्वार्थ का आदि कारण है किंतु सत्य स्वार्थ से कोसों दूर रहता है। सत्य सर्वत्र है, वह सदा न्याय और वास्तविकता की ओर प्रवृत्त होगा। यदि हम अपने अन्तःकरण को तुच्छ स्वार्थपरता से विमुक्त कर मणि की तरह निर्मल और विशुद्ध बना लें तो हमारे अंतःकरण में उस सत्य का प्रकाश स्फुरित होगा जो प्रज्वलित कामनाओं की मल भ्रांतियों के विक्षेप और पापाचरण रूपी आवरण से सर्वदा पृथक् है।

हम सब मोक्ष पथ के यात्री हैं, हम एक दोराहे पर खड़े हैं एक मार्ग स्वर्ग की ओर जाता है, दूसरा नरक की ओर। स्वर्ग की ओर जानेवाली जो गाड़ी है उसके मार्ग में दस स्टेशन हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, क्षमा, दान—और नरक को जानेवाले रास्ते में केवल तीन ही बड़े जंकशन हैं—काम, क्रोध और लोभ।

भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारंनाशनमात्मना।
कामः क्रोधस्तथा लोभः तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

इनमें काम सबसे प्रबल है। रजोगुण से उत्पन्न हुआ काम ही मनुष्य को पाप की ओर घसीटता है, काम-इच्छा से स्त्री की ओर देखने और विषय-सम्बन्धी वृत्तियों में वृद्धि करने की अपेक्षा लाई की तप्त शलाखाओं से नेत्रों को फोड़ लेना कहीं उत्तम है। मन को सदैव वश में रखकर उसे सीमा से आगे मत जाने दो। प्रतिक्षण स्वच्छ विचारों तथा भावों में मग्न रहो। एकाग्रता तथा संयम का अवलम्बन कर काम के विकट वेग का विरोध करो।

जब मैं आपको काम रूपी शत्रु का विरोध करने के लिये कहता हूँ, तो मैं यह कभी नहीं कहता कि आप अपनी घर-गृहस्थी की जिम्मेदारियों को छोड़कर एकदम कौपीन पहन जंगल की ओर चल दें। मैं आपसे केवल इतना ही कहूँगा कि आप जल में कमल के समान रहें। पानी में जैसे नाव रहती है वैसे ही आप संसार-सागर में विचरण करें। पानी में नाव भले ही हो परन्तु नाव में पानी न हो। सत्य सनातन वैदिक धर्म का यही सर्वप्रिय आदर्श है। मैं तुमसे कहता हूँ जब कोई स्त्री तुम्हारे सामने आजाय उसे ऐसे देखो जैसे पिता पुत्री को देखता है जैसे भाई-बहिन को देखता है। जो साधक किसी स्त्री को दुर्भाव (विषय भाव) से देखता है वह अपने धार्मिक संयम

व्रत को भङ्ग कर पतित हो जाता है। मानव शरीर में काम की अतिशय अधिकता है, इसलिये प्रत्येक मनुष्य को इससे दूर रहना चाहिए।'

भगवान बुद्ध के जीवन की एक बड़ी सुंदर कथा है—एक ब्राह्मण महात्मा बुद्ध के पास आया और बोला, भगवन्! मेरे मन में एक जिज्ञासा है—सबसे अधिक भयङ्कर चोर कौन है? सबसे अधिक कीमती खजाना क्या है? सबसे अधिक आकर्षित करनेवाली वस्तु कौन सी है? सबसे अधिक घृणा करने योग्य कौन वस्तु है? सबसे अधिक दुःख क्या है और सबसे बड़ा सुख क्या है?

महात्मा बुद्ध ने उत्तर दिया—दुर्व्यसन और दुर्भाव सबसे अधिक चोर है। सुकर्म और शुभ-भाव सबसे कीमती खजाना है। कामिनी और कांचन चित्त को अधिक खींचनेवाले हैं। आत्मश्लाघा और अपनी प्रशंसा सुनने का व्यसन सबसे अधिक घृणा करने योग्य है। अनुतप्त हृदय का ताप सबसे अधिक दुःखदायक पीड़ा है। पाप से मुक्ति और तृष्णा से निवृत्ति ही सबसे बढ़कर सुख है।

प्राणियों की रचना

पूज्य पं० मदनमोहन मालवीयजी की लेखनी से—

हम देखते हैं कि प्राणात्मक जगत् की रचना इस

बात की घोषणा करती है कि इस जगत् का रचनेवाला एक ईश्वर है। यह चैतन्य जगत् अत्यन्त आश्चर्य से भरा हुआ है। जरायु से उत्पन्न होनेवाले मनुष्य, सिंह, हाथी, घोड़े, गौ आदि; अण्डों से उत्पन्न होनेवाले पक्षी; पसीने और मैल से पैदा होनेवाले कीड़े; पृथ्वी को फोड़कर उगने वाला वृक्ष; इन सबकी उत्पत्ति, रचना और इनका जीवन परम आश्चर्यमय है। नर और नारी का समागम होता है उस समागम में नर का एक अत्यन्त सूक्ष्म किंतु चैतन्य अंश गर्भ में प्रवेश कर नारी के एक अत्यंत सूक्ष्म सचेत अंश से मिल जाता है। इसको हम जीव कहते हैं। वेद कहते हैं कि—

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥

(श्वेता० ५।९)

एक बाल के आगे के भाग के खड़े-खड़े सौ भाग कीजिये और उन सौ में से एक के फिर सौ खड़े-खड़े टुकड़े कीजिये और इसमें से एक टुकड़ा लीजिये तो आपको ध्यान में आवेगा कि उतना सूक्ष्म जीव है। यह जीव गर्भ में प्रवेश करने के समय से शरीर रूप से बढ़ता है। विज्ञान के जाननेवाले विद्वानों ने अणुवीक्षण यन्त्र से देखकर यह बताया है कि मनुष्य के वीर्य के एक बिंदु में लाखों जीवाणु होते हैं और उनमें से एक ही गर्भ में प्रवेश पाकर

टिकता और वृद्धि पाता है। नारी के शरीर में ऐसा प्रबंध किया गया है कि यह जीव गर्भ में प्रवेश पाने के समय से एक नली के द्वारा आहार पावे। इसकी वृद्धि के साथ-साथ नारी के गर्भ में एक जल से भरा थैला बन जाता है जो गर्भ को चोट से बचाता है। इस सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, अणु-से-अणु बाल के आगे के भाग के दस हजारवें भाग के समान सूक्ष्म वस्तु में यह शक्ति कहाँ से आती है कि जिससे यह धीरे-धीरे अपने माता और पिता के समान रूप और सब अवयवों को धारण कर लेता है? कौन-सी शक्ति है, जो गर्भ में इसका पालन करती और इसको बढ़ाती है? वह क्या अद्भुत रचना है, जिससे बच्चे के उत्पन्न होने के थोड़े समय पूर्व ही माता के स्तनों में दूध आ जाता है? कौन-सी शक्ति है, जो सब असंख्य प्राण-वन्तों को, सब मनुष्यों को, सब पशु-पक्षियों को, सब कीट-पतंगों को, सब पेड़-पल्लवों को पालती है और उनको समय से चारा और पानी पहुँचाती है? कौन-सी शक्ति है जिससे चींटियाँ दिन में भी और रात में भी सीधी भीत पर चढ़ती चली जाती हैं। कौन-सी शक्ति है जिससे छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े पक्षी अनन्त आकाश में दूर-से-दूर तक बिना किसी आधार के उड़ा करते हैं?

नरों और नारियों की, गौओं की, सिंहों की, हाथियों की, पक्षियों की, कीड़ों की सृष्टि कैसे होती

है ? मनुष्यों से मनुष्य, सिंहों से सिंह, घोड़ों से घोड़े, गौओं से गौ, मयूरों से मयूर, हंसों से हंस, तोतों से तोते, अपने-अपने माता-पिता के रंग-रूप-अवयव लिये हुए कैसे उत्पन्न होते हैं ? छोटे-से-छोटे बीजों से किसी अचिंत्य शक्ति से बढ़ाये हुए बड़े और छोटे असंख्य वृक्ष उगते हैं तथा प्रतिवर्ष और बहुत वर्षों तक पत्ती, फल, फूल, रस, तैल, छाल और लकड़ी से जीवधारियों को सुख पहुँचाते, सैकड़ों, सहस्रों स्वादु, रसीले फलों से उनको तृप्त और पुष्ट करते, बहुत वर्षों तक श्वास लेते, पानी पीते, पृथ्वी से और आकाश से आहार खींचते आकाश के नीचे झूमते-लहराते रहते हैं ?

इस आश्चर्यमयी शक्ति की खोज में हमारा ध्यान मनुष्य के रचे हुए एक घर की ओर जाता है। हम देखते हैं, हमारे सामने यह एक घर बना हुआ है। इसमें भीतर जाने के लिये एक बड़ा द्वार है। इसमें अनेक स्थानों में पवन और प्रकाश के लिये खिड़कियाँ तथा झरोखे हैं। भीतर बड़े-बड़े खम्भे और दालान हैं। धूप और पानी रोकने के लिये छतें और छज्जे बने हुए हैं। दालान-दालान में, कोठरी-कोठरी में भिन्न-भिन्न प्रकार से मनुष्य को सुख पहुँचाने का प्रबन्ध किया गया है। घर के भीतर से पानी बाहर निकालने के लिये नालियाँ बनी हुई हैं। ऐसे विचार से घर बनाया गया है कि रहनेवालों को सब ऋतु में सुख

दे। इस घर को देखकर हम कहते हैं कि इसका रचनेवाला कोई चतुर पुरुष था, जिसने रहनेवालों के सुख के लिये जो-जो प्रबन्ध आवश्यक था, उसको विचारकर घर रचा। हमने रचनेवाले को देखा भी नहीं, तो भी हमको निश्चय होता है कि घर का रचनेवाला कोई था या है और वह ज्ञानवान्, विचारवान् पुरुष है।

अब हम अपने शरीर की ओर देखते हैं। हमारे शरीर में भोजन करने के लिये मुँह बना है। भोजन चबाने के लिये दाँत है भोजन को पेट में पहुँचाने के लिये गले में नाली बनी है। उसी के पास पवन के मार्ग के लिए एक दूसरी नाली बनी हुई है। भोजन को रखने के लिये उदर में स्थान बना है। भोजन पचकर रुधिर का रूप धारण करता है, वह हृदय में जाकर इकट्ठा होता है और वहाँ से सिर से पैर तक सब नसों में पहुँचकर मनुष्य के सम्पूर्ण अङ्ग को शक्ति, सुख और शोभा पहुँचाता है। भोजन का जो अंश शरीर के लिये आवश्यक नहीं है उसे मल के रूप में बाहर जाने के लिये मार्ग बना है। दूध, पानी या अन्य रस का जो अंश शरीर को पोसने के लिये आवश्यक नहीं है, उसके निकलने के लिये दूसरी नाली बनी हुई है। देखने के लिये हमारी दो आँखें, सुनने के लिये दो कान, सूँघने को नासिका के दो रन्ध्र और चलने के लिये हाथ-पैर बने हैं। सन्तान की उत्पत्ति के लिये

जनन-इन्द्रियाँ हैं। हम पूछते हैं—क्या यह परम आश्चर्यमय रचना केवल जड़ पदार्थों के संयोग से हुई है या इसके जन्म देने और वृद्धि में, हमारे घर के रचयिता के समान किंतु उससे अनंत गुण अधिक किसी ज्ञानवान्, विवेकवान्, शक्तिमान् आत्मा का प्रभाव है ?

मन और वाणी की अद्‌भुत शक्तियाँ

इसी विचार में डूबते और उतराते हुए हम अपने मन की ओर ध्यान देते हैं तो हम देखते हैं कि हमारा मन भी एक आश्चर्यमय वस्तु है। इसकी—हमारे मन की विचारशक्ति, कल्पनाशक्ति, गणनाशक्ति, रचनाशक्ति, स्मृति, धी, मेधा सब हमको चकित करती हैं। इन शक्तियों से मनुष्य ने क्या-क्या ग्रंथ लिखे हैं, कैसे-कैसे काव्य रचे हैं, क्या-क्या विज्ञान निकाले हैं, क्या-क्या आविष्कार किये हैं और कर रहे हैं, यह थोड़ा आश्चर्य नहीं उत्पन्न करता। हमारी बोलने और गाने की शक्ति भी हमको आश्चर्य में डुबा देती है। हम देखते हैं कि यह प्रयोजनवती रचना सृष्टि में सर्वत्र दिखायी पड़ती है और यह रचना ऐसी है कि जिसके अन्त तथा आदि का पता नहीं चलता। उस रचना में एक-एक जाति के शरीरियों के अवयव ऐसे नियम से बैठाये गये हैं कि सारी सृष्टि शोभा

से पूर्ण है। हम देखते हैं कि सृष्टि के आदि से सारे जगत् में एक कोई अद्भुत शक्ति काम कर रही है जो सदा से चली आयी है, सर्वत्र व्याप्त है और अविनाशी है।

हमारी बुद्धि विवश होकर इस बात को स्वीकार करती है कि ऐसी ज्ञानात्मिका रचना का कोई आदि, सनातन, अज, अविनासी, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप, जगत्-व्यापक, अनंत-शक्ति-सम्पन्न रचयिता है। उसी एक अनिर्वचनीय शक्ति को हम ईश्वर, परमेश्वर, परब्रह्म, नारायण, भगवान्, वासुदेव, शिव, राम, कृष्ण, विष्णु, जिहोवा, गाड, खुदा, अल्लाह आदि सहस्रों नामों से पुकारते हैं।

मानव-जीवन की विशेषता

श्री पं० गोपालदत्त शास्त्री की लेखनी से—

अन्य शरीरधारी जन्तुओं की भाँति मानव भी एक जंतु ही है। आहार निद्राभय मैथुनादि की प्रवृत्ति इसमें भी अन्य जंतुओं के समान ही है। हो सकता है कभी मानव भी अन्य जन्तुओं के समान ही अनियमित जीवन बिताता रहा हो परंतु बुद्धिमान होना मानव की अपनी विशेषता है। बुद्धि के कारण ही मानव अन्य जंतुओं से भिन्न एवं उन्नत है अन्य जंतुओं का जीवन आज भी वैसा ही है जैसा कि सृष्टि के आदि में रहा होगा परंतु

मानव ने केवल बुद्धि - बल से ही अपने जीवन में महान् परिवर्तन कर लिया है तथा संस्कार के द्वारा वह प्रकृति पर शासन कर रहा है। मानव ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अनेकानेक-अनुपम साधन जुटा लिये हैं।

मानव ने शीत-वात से सुरक्षित रहने के लिये अनेक प्रकार के वस्त्रों का निर्माण किया, धूप और वर्षा से सुरक्षित रहने के लिये उसने भव्य भवनों का निर्माण किया है। वह पक्षियों की भाँति आकाश में विचरता है। जब कि अन्य सब जीव आज भी प्रारंभिक अवस्था में ही पड़े हैं। यह सब बुद्धिमत्ता का ही फल है। प्रथम तो मानव ने बुद्धि का प्रयोग आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही किया परंतु आवश्यकताओं के पूर्ण हो जाने पर भी बुद्धि शांत न हुई और उसने आवश्यकताओं को विलास के रूप में बदल लिया। अब बुद्धि को खुलकर खेलने के लिये पर्याप्त क्षेत्र मिल गया। विलास की दिशा में प्रगति करने के लिये उसे पर्याप्त अवकाश मिला। आवश्यकताओं की तो सीमा है पर विलास की कोई सीमा नहीं। जब मनुष्य ने शीत, वात, वर्षा से बचने के उद्देश्य से घर बनाया था तब उसकी सीमा थी किंतु जब उसमें सौन्दर्य की भावना आ गई तो उसकी सीमा न रही। एक मंजिल दो मंजिल, फिर मिट्टी का, ईंट का, पत्थर का, संगमर-

भर का, फिर बेल बूटे की खुदाई, फिर रत्नों से जड़ाव और जाने क्या क्या जिनका कि घर बनाने के उद्देश्य से कोई सम्बन्ध नहीं है केवल मन की सौन्दर्य-पिपासा ही इसका उद्देश्य है और इसकी कोई सीमा नहीं।

प्रथम तो मनुष्य को मनुष्येतर जन्तुओं से ही स्पर्धा थी किन्तु वे बेचारे तो इसकी पहिली ही दौड़ में बहुत पीछे रह गये और आगे बढ़ने पर इस स्पर्धा भावना का प्रयोग मनुष्य मनुष्य के प्रति करने लगा। फिर क्या था लम्बी दौड़ होने लगी यहाँ तक कि मानव की चाल दोहरी हो गई। एक ओर तो यह अपने लिये अच्छे से अच्छे उपभोग के साधन जुटाने में लगा दूसरी ओर अपने प्रति-स्पर्धी के सुख साधनों को नष्ट करने में भी प्रयत्नशील हुआ क्योंकि स्पर्धावान प्राणी किसी को अपनी बराबरी में नहीं सह सकता। इधर कुछ लोगों ने उस प्रगतिशील बुद्धि का प्रयोग उत्पादन में न करके अपहरण में करना प्रारम्भ कर दिया। जिस किसी ने अपने लिये कुछ सुख साधन एकत्र किये और उन्होंने देख पाये बस छल से अथवा बल से उन्होंने उन्हें छीन लिया और इस भाँति किसी के उत्पा-दन को कोई भोगने लगा, साथ ही जो लोग बुद्धिबल में तो कम थे किन्तु उपभोग की इच्छा उनमें भी थी अतः इन साधनहीन प्राणियों ने साधन सम्पन्न लोगों की दासता स्वीकार कर ली और अपनी सेवा के मार्ग से ही पराये

उत्पादन में अपने को भागीदार बना लिया और मानव मानव का दास हो गया।

इस भाँति मानव जीवन में बड़ी विषमता उत्पन्न हो गई एक ओर हीन दास दूसरी ओर अपहरण करनेवाले दस्यु तीसरे उत्पादक और सभी में स्पर्धा अब क्या ठिकाना था बुद्धि ने सुख सुख करते महा विनाश तथा बाह्य सुख के लोभ में महान् आन्तरिक दुःख के द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया जो खतरा बुद्धि ने उत्पन्न किया उससे बचने का उपाय भी बुद्धि ही निकाल सकती थी अतः जिस बुद्धि ने यह विनाश उपस्थित किया था उस बुद्धि की गति अब उसके बचाव को सोचने लगी।

आध्यात्म विद्या

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख भाग्भवेत ॥

भारतीय ऋषियों ने संसार की इस घोर विषमता और अशान्ति को देखकर इस प्रकार के उत्पादन और उपभोग की प्रणाली को अनिष्ट घोषित किया और इस अशांत लोक से सम्पर्क त्याग कर बनों में जाकर सुख की साँस ली। बुद्धि तो प्रगतिशील है वह बन में जाकर भी विश्राम न कर सकी। वह निरंतर मानव जीवन में समता की स्था-

पना करने तथा जीवन में सच्चे सुख की खोज में लगी ही रही और उसने संयम का आविष्कार किया। संयम से शारीरिक और मानसिक सुख अवश्य सिद्ध हुआ परंतु बुद्धि ने इसे सच्चे सुख के रूप में स्वीकार नहीं किया क्योंकि यह अन्तरात्मा के आंदोलन को मिटाने में समर्थ नहीं हुआ इसका कारण यह था कि संयम का संबंध केवल व्यक्ति से ही रहा जो संयम करे वह वाह्य रूप से अपने को सुखी देखता था परंतु आत्मा तो सर्व स्वरूप है अतः एकात्मा का सुख सर्वात्मा के सुख पर निर्भर है। संयम तक मानव का विचार था कि 'मैं सुखी रहूँ'। इस क्षुद्र सुख में महान् आत्मा भला कैसे सुखी हो सकता था वह अपने आप बोल उठा 'सर्वे भद्राणि पश्यन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भवन्तु सुखिनः माकश्चि दुखः भाग्यवेत्' इस आकाश-वाणी की ओर भारतीय ऋषियों का ध्यान खिंचा और वे विचारने लगे 'यह कौन बोल रहा है' उन्होंने अपनी बुद्धि की गति को इस वक्ता की खोज में लगा दिया और खोजते खोजते वे आत्मा तक पहुँचे और उसका दर्शन किया। इस खोज का नाम ही अध्यात्म विद्या है। और उन्होंने अनु-भव किया कि यही सच्चा सुख है, यही आनन्द है, यही अमृत है जिसे पाकर कुछ और पाना शेष नहीं यह सुख अत्यंत है इसकी कहीं सीमा नहीं यह आत्मा सर्व रूप है इसमें कला या खंड नहीं होते सब आत्मा के सुख में ही एकात्मा का

सुख निहित है और वे मैं सुखी रहूँ, के स्थान पर 'सब सुखी रहे', बोलने लगे।

उन्होंने सर्वात्मा के सुखी करने के लिये सर्वं खल्विदं ब्रह्म का मंत्र फूँक दिया किन्तु केवल शब्द से ही तो सर्वात्मा सुखी नहीं हो सकता था। सर्वात्मा को सुखी करने के लिये व्यापक साधन की आवश्यकता थी। मृत्यु से अमृत तक पहुँचने के लिये मार्ग साधन आवश्यक था अतः उन्होंने साधन के रूप में अपनी पहिली खोज के रूप में प्राप्त होनेवाले संयम का प्रयोग किया इस भाँति अमृत सिंधु के पथिकों को साधन मिला और साधन भूत संयम को आधार मिला और उन्होंने अध्यात्म ज्ञान संयम को मिलाकर एक नियमावली बनाई।

और उस नियमावली में भिन्न भिन्न रूप में बिखरे हुये समाज का संगठन किया। इन नियमों को पालन करते हुये मानव ने सुख की साँस ली और महा विनाश से अपने को मुक्त पाया।

सामाजिक नियमों के रूप में जो नियमावली निर्माण की, उसी का नाम शास्त्र है।

धर्म व्रत संयम नियम

शास्त्रों में—विरोध परिहार प्रकरण में निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं—

स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान् व्यवहारतः ।
अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः ॥

दो स्मृतियों का विरोध हो तो व्यवहार से देखने पर न्याय ही बलवान होगा और अर्थशास्त्र से धर्मशास्त्र बलवान होगा। ऐसी व्यवस्था की गयी है। अर्थशास्त्र की अपेक्षा धर्मशास्त्र श्रेष्ठ है, क्योंकि आस्तिक लोगों के लिये अर्थ की अपेक्षा धर्म ही आदरणीय है। अर्थ केवल इस लोक के सुखों के लिये है, और धर्म इस लोक तथा परलोक के सुखों का कारणभूत है।

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यच्च गच्छति।

धर्म ही हमारे अभ्युदय और निश्रयस् की सिद्धि में कारणभूत है, नारायण उपनिषद् में लिखा है कि—

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्म्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति-धर्म्मेण सर्वं प्रतिष्ठतं तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति ॥

धर्म समस्त संसार की स्थिति का मूल है। संसार में लोग धर्मात्मा का अनुशरण करते हैं, धर्म से पाप दूर होता है, धर्म के द्वारा ही सारा संसार स्थित है इसलिये धर्म ही परम पदार्थ कहा गया है।

उन्नतिं निखिला जीवा धर्मेणैव क्रमादिह।
विदधानाः सावधाना लभंत्यन्ते परं पदम् ॥

धर्म के द्वारा ही समस्त जीव कर्मोन्नतिलाभ करते हुए

अन्त में परमपद को प्राप्त करते हैं। धर्मप्राण अर्जुन इन सब बातों को समझकर धर्म के सामने अर्थ को तुच्छ समझता हुआ अर्थशास्त्र की अपेक्षा धर्मशास्त्र को अपने लिये हितकारी मानता है और धर्मशास्त्र के वचनों पर ध्यान देकर उसने (महाभारत के) युद्ध को अधर्म मानकर युद्ध से उपराम होना चाहता है। धर्म के निर्णय के लिये मनु के निम्न वाक्य से इस कर्म को अधर्म मानता है। स्वजन वध रूप कर्म अधर्म है यह उसने समझा है। धर्म के लक्षण के सम्बन्ध में मनु महाराज लिखते हैं कि—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।

वेद, स्मृति सदाचार और आत्मतुष्टिका जो कार्य है, वह धर्म है।

इसी धर्म-धर्माचरण धर्म के अनुसार आचरण करने के नियमों को ही संयम् सद्व्रत—एवं यम नियम कहते हैं। भगवान् दत्तात्रेय ने कहा है—

आत्महितं चिकीर्षता सर्वेण सर्वदा सर्वं।
स्मृति मास्मास्थाय सद्वृत्तमनुष्ठेयम्॥

आत्महित के चाहनेवाले सभी को पूर्ण रूप से प्रत्येक समय सावधानी से सद्वृत्त (शिष्टाचार) सदाचार का पालन करना चाहिये। सद्वृत्त का पालन करनेवाले को

एक ही काल में दो फल सिद्ध होते हैं एक आरोग्य दूसरा इन्द्रिय विजय।

ब्रह्मर्षि वशिष्ठजी ने योगवाशिष्ठ में बताया है कि—

तमा हिन्सा सत्यास्तेय, ब्रह्मचर्याअपरिगृहः यमः।
शौच-सन्तोष तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान नियमः।

भावार्थ—सत्य, अहिंसा, अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रहः शौच सन्तोष, तप स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान।

अर्थात्—तमोगुण हिंसा, असत्य छल चोरी आदि का त्याग करना और ब्रह्मचर्य का पालन करना तथा लोभ के वशीभूत हो द्रव्यादि का ग्रहण न करना यम है। शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान् (ईश्वर का आत्मरूप परमात्मा का ध्यान थे नियम हैं।

पूज्य महात्मा गांधी एकादश व्रतों के पालन करने का संकल्प निम्न शब्दों में नित्य प्रार्थना के समय करते थे और सामुहिक रूप से लोगों से भी कराते थे।

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह,
शरीराश्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जनः।
सर्वधर्मी समानत्व स्वदेशी स्पर्शभावना,
ही एकादश सेवावी नम्रत्वे व्रतनिश्चये॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शारीरिक श्रम, अस्वाद, सब जगह भय का त्याग, सब धर्मों के साथ समान भाव, स्वदेशी धर्म का पालन, स्पर्शास्पर्श

भावना का त्याग—इन ग्यारह व्रतों को पालन करने का नम्रतापूर्वक निश्चय करता हूँ।

धर्म और धर्मों का सारतत्व महात्मा गांधी के शब्दों में—सत्य से धर्म बढ़ता है और यह बात मैंने हिन्दू धर्म से सीखी है। सत्यान्नास्तिपरोधर्मः और अहिंसा परमोधर्मः हिन्दू धर्म ने सिखाया है। भगवान पतंजलि है। जिन्होंने अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि पाँच व्रतों को हिन्दू धर्म में विज्ञान का स्थान दिया। और धर्म में भी यह बातें हैं लेकिन इनका विज्ञान हिन्दूधर्म ने ही रचा है।

राम, रहीम, खुदा, ईश्वर सभी भगवान के नाम हैं बल्कि उसके अनन्त नाम हैं।

हिन्दू धर्म बहुत बड़ा धर्म है बहुत पुराना धर्म है। मेरी समझ में यह अनादि है। तभी इसे सनातन धर्म भी कहते हैं।

वेद में जो बातें बताईं हैं वे धर्म का निचोड़ है। और धर्म मनुष्य प्राणी के धर्म के साथ साथ पैदा हुआ है। इसलिये वेद अनादि है। और ये बातें जब मनुष्यों ने जानी तब से कंठस्त रखीं, बहुत दिनों बाद वे लिखी गईं क्योंकि मनुष्य ने लिखना बाद में सीखा, उन लिखी हुई बातों में से भी बहुत सी बदल गई हैं। बाइबिल का भी इस तरह से बहुत सा हिस्सा विस्मृत हो गया है। कुरान का भी ऐसा ही हुआ है। इस तरह शास्त्र अनन्त है।

शास्त्रों का और वेद का निचोड़ इतना ही है कि ईश्वर है और वह एक ही है। कुरान और बाइबिल का भी यही निचोड़ है कोई यह न कहे कि बाइबिल में तीन भगवान बताये हैं। वहाँ भी भगवान एक ही है।

हमारे महाभारत में जो बात कही गयी है वह सिर्फ हिन्दुओं के काम की ही नहीं है। दुनियाँ भर के काम की है। यह कथा पाँडव-कौरव की है। पाँडव राम के पुजारी यानी भलाई के पूजने वाले रहे और कौरव रावण के पुजारी यानी बुराई को अपनाने वाले रहे, वैसे दोनों एक ही खानदान के भाई भाई थे, आपस में लड़ते हैं, और अहिंसा का रास्ता छोड़ कर हिंसा का लेते हैं। नतीजा यह कि रावण के पुजारी कौरव तो मारे ही गये, पर पाँडवों ने भी जीत कर हार ही पाई। युद्ध की कथा सुनने भर को इने गिने लोग बच पाये और आखिर उनका जीवन भी इतना किरकिरा हो गया कि उन्हें हिमालय में जाकर स्वर्गारोहण करना पड़ा। जन्म और मरण हमारे नसीब में लिखा हुआ है फिर उसमें हर्ष-शोक क्यों करें। अगर हम हँसते हँसते मरेंगे तो सचमुच एक नये जीवन में प्रवेश करेंगे। (प्रार्थना प्रवचन से)

इसलिए याद रखिये कि—

अन्याय सहकर बैठ रहना, यह महा दुष्कर्म है।
न्यायार्थ अपने बंधु को भी दंड देना धर्म है।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, कि जब लगि घट में प्राण।

जो चाहउ आपन कल्याणा, छल तजि करहु सत्य कर ध्याना।

परोपकाराय च पुण्याय, पापाय परपीड़नम्।

सदाचार-शिष्टाचार

मनुष्य समाज का संगठन और उत्थान करनेवाले दो महान् मूल तत्त्व अधिकार और कर्त्तव्य हैं। इन दोनों को आपस में मिलानेवाला और इनके द्वारा महान शक्ति उत्पन्न करनेवाला शिष्टाचार है। प्रत्येक सभ्य, जो समाज में प्रवेश करता है उसे नम्रता और सुजनता अवश्य धारण करनी चाहिये, क्योंकि इन्हीं के सहारे अधिकारों की रक्षा और कर्त्तव्यों का पालन होता है।

शिष्टाचार अथवा सदाचार का उपदेश देते हुए भगवान दत्तात्रेय अपने प्रिय शिष्य अग्निवेश से कहते हुए बताते हैं कि—

'क्रोधी को समझाकर शांत करना चाहिये, भयभीत को धीरज बँधाना चाहिये, दीन की सहायता के लिये तत्पर रहना चाहिये, प्रतिज्ञा को निभाना चाहिये, शांति-प्रिय होना चाहिये, दूसरों के कठोर वाक्यों को सहन करने

में समर्थ होना चाहिये, क्षमाशील होना चाहिये, गुणों को देखना चाहिये, जिन कारणों से राग द्वेष उत्पन्न हों उन कारणों का परित्याग करना चाहिये, झूठ नहीं बोलना चाहिये, दूसरे के धन को हरण नहीं करना चाहिये, पराई स्त्री की इच्छा नहीं करना चाहिये, पराई सम्पत्ति में रुचि नहीं रखना चाहिये, दूसरों की लड़ाई में प्रसन्न नहीं होना चाहिये, किसी के प्रति अन्याय नहीं करना चाहिये, यदि कोई हमारे प्रति अन्याय करे तो भी हमें बदले में अन्याय नहीं करना चाहिये, दूसरे के दोषों का वर्णन नहीं करना चाहिये, पराये गुप्त रहस्यों को प्रकाशित नहीं करना चाहिये, अधार्मिक, राष्ट्रद्रोही, उन्मत्त, पतित और भ्रूण हत्या या किसी व्यक्ति को अचेत अवस्था में वध करनेवाले और कुख्यात पुरुषों के साथ सम्पर्क नहीं रखना चाहिये, पापाचारी, स्त्री-मित्र और सेवकों को त्याग देना चाहिये, उत्तम पुरुषों से विरोध नहीं करना चाहिये, कपट पूर्वक कार्य साधन में रुचि नहीं रखना चाहिये, बिना विचारे कार्य नहीं करना चाहिये, अति निद्रा, अति जागरण, अति स्नान, अति पान, अति भोजन नहीं करने चाहिये, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, ब्राह्मण, गुरु, स्त्री, इनकी ओर मुख करके थूकना अधोवात का त्यागना तथा शौच या लघुशंका नहीं करना चाहिये, मार्ग में थूकना या लघुशंका नहीं करना चाहिये, भोजन के समय जप करते हुए होम

करते हुए अध्ययन करते हुए एवं अन्य मांगल्य क्रियाओं के समय नाक नहीं छिनकना चाहिये, स्त्री का अपमान नहीं करना चाहिये अत्यन्त विश्वास भी नहीं करना चाहिये, अपने गुप्त रहस्य नहीं बताना चाहिये, तथा अधिकार भी पूर्णरूप से नहीं देने चाहिये, सामाजिक नियमों का उल्लंघन नहीं करना चाहिये, व्यक्तिगत नियमों को नहीं तोड़ना चाहिये, रात में तथा अनुचित स्थानों में नहीं घूमना चाहिये, संध्या समय में भोजन, अध्ययन, स्त्री, और निद्रा का सेवन नहीं करना चाहिये, बालक, वृद्ध, लोभी, मूर्ख, उत्साहहीन, तथा कर्मों को कठिन माननेवाले मनुष्यों के साथ मित्रता नहीं करना चाहिये, मद्यपान, जुआ, वेश्या, आदि दुर्व्यसनों की चर्चा में मन नहीं लगाना चाहिये, अहंकार नहीं करना चाहिये, क्रिया कुशल होना चाहिये, सबसे स्नेह करना चाहिये, दोष दृष्टि नहीं रखना चाहिये, ब्राह्मण की निंदा नहीं करना चाहिये, गाय पर डंडा नहीं उठाना चाहिये, वृद्ध पुरुष, गुरु तथा जनसमूह और राजा पर आक्षेप नहीं करना चाहिये, बहुत बातें नहीं करना चाहिये, बन्धु तथा अपने से स्नेह करनेवाले आपत्ति में सहायता करनेवाले और अपने रहस्य को जाननेवाले को त्यागना नहीं चाहिये, अधीर नहीं होना चाहिये, उद्दंड भी नहीं होना चाहिये, अपने आश्रितों का पूर्ण पोषण करना चाहिये, ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिये जिससे

आत्मीयजनों में अपने प्रति अविश्वास हो, सुख के साधनों का अकेले ही उपभोग नहीं करना चाहिये, प्रत्येक स्थिति में दुःखी रहने का स्वभाव नहीं बनाना चाहिये, ऐसा कोई आचरण अथवा कार्य नहीं करना चाहिये जिसका परिणाम निश्चित रूप से दुःख ही हो, सब किसी का विश्वास नहीं करना चाहिये, सब पर शंका भी नहीं करनी चाहिये, हर समय सोचते ही नहीं रहना चाहिये, जो कार्य जिस समय करने का हो उसे उसी समय करना चाहिये, अच्छे प्रकार से परीक्षा करके ही कार्य में प्रवृत्त होना चाहिये, इन्द्रियों के आधीन नहीं होना चाहिये, चंचल मन को विषयों के शुष्क चिन्तन में घुमाना नहीं चाहिये, बुद्धि पर विचारों का बहुत भार नहीं देना चाहिये एवं इन्द्रियों पर भी विषय ग्रहण रूप भार अधिक नहीं देना चाहिये, क्रोध और हर्ष के समय में जो विचार उठें उनके अनुसार कभी कार्य नहीं करना चाहिये, शोक को हृदय में अधिक काल नहीं रखना चाहिये, कार्य सिद्ध होने पर गर्व नहीं करना चाहिये, कार्य के असिद्ध होने पर दीन नहीं होना चाहिये, पौरुष का त्याग कभी नहीं करना चाहिये, कुछ वेदोक्त आशीर्वाद अपने लिये सदा प्रयोग करना चाहिये जैसे कि—तेज रूप अग्नि मेरे शरीर से कभी न जाये, वायु मेरे प्राणों का सदा पोषण करें, विष्णु मुझे बल से पूर्ण करें, इन्द्र मुझे वीर्य से पूर्ण करें, जल मुझमें कल्याण रूप

होकर प्रवेश करें। इस प्रकार अपने लिये शुभाशीर्वादों का प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि आशीर्वादों के कारण आत्मा की उन्नति होती है उन्नत आत्मा लौकिक भावों से ऊँचा उठकर कृतकृत्य हो जाता है।'

ज्ञान पाकर उसको दान करना चाहिये, ज्ञान का दान ही सच्चा दान है। जिसको पाकर जीव सुखी और कृत कृत्य होकर अभय हो जाता है। इसलिए पाये हुये ज्ञान को जीव मात्र के कल्याण के लिए खुले हुए हाथों वितरण करना चाहिये। पूर्वकाल में होने वाले समस्त शिष्ट ऋषियों ने यही किया है। नारद जी ने भक्तिसूत्र के रूप में, जैमिनी, पतंजलि आदि ने योग दर्शन के रूप में कपिलदेव ने सांख्यदर्शन के रूप में, पाणिनि, वररुचि आदि ऋषियों ने शब्द शास्त्र के रूप में पराशर, वाराह, मिहर, आदि आचार्यों ने ज्योतिष शास्त्र के रूप में, अग्नि-वेश, नागार्जुन, धनवन्तरि आदि ऋषियों ने आयुर्वेद के रूप में, कृष्ण द्वैपायन व्यास ने पुराण विद्या के रूप में अपने ज्ञान का ही तो दान किया है। जो कि मानव जाति के पास अक्षय निधि के रूप में सुरक्षित है। जिस ज्ञान मार्ग से शास्त्र प्रवर्तक आचार्यों ने अपने को कृतकृत्य किया वे ही अपने सिद्धान्त रूप पद चिन्हों को अपने बाद होने वाली जनता के कल्याणार्थ छोड़ गये हैं जिन पर चल कर साधारण जनता अपने लक्ष्यभूत आनन्द को प्राप्त कर सके।

ज्ञान के दान का आधार मैत्री है, भूत्रमात्र में अपनी आत्मा को देखते हुए सर्व दृष्टि से सबके दुःखों को अपना दुःख और सबकी समस्याओं को अपनी समस्या समझते हुए उनकी सहायता करना मैत्री है। यही अध्यात्म का मूलाधार है। यही सद्वृत सदाचार और शिष्टाचार का भी मूल है।

जिस प्रकार उच्च नैतिक आदर्श का पालन करने के लिये मनुष्य को सदाचारी होना आवश्यक है, उसी प्रकार जनसाधारण के साथ सद्व्यवहार करने के लिये शिष्टाचार का पालन करने की आवश्यकता है। यद्यपि शिष्टाचार सदाचार का एक अंग है, तथापि दोनों में कई बातों में अंतर है। सदाचार का धर्म से प्रत्यक्ष संबंध है और उसकी अवहेलना पाप समझा जाता है। पर शिष्टाचार का संबंध व्यक्ति अथवा समाज के सुभीते तथा संतोष से है और उसकी अवज्ञा से दूसरों को अप्रसन्नता होती है, जो बहुधा वैमनस्य का कारण हो जाती है। सदाचार मन, वचन, और कर्म की एकता के रूप में पाला जाता है; पर शिष्टाचार बहुधा वचन और कर्म से ही संबंध रखता है। सदाचार की अवहेलना से भयंकर आत्मिक परिणाम उपस्थित हो सकते हैं, पर शिष्टाचार के अभाव में बहुधा वैसा भविष्य नहीं होता।

शिष्टाचार और चापलूसी में भी अंतर है। दूसरों को

प्रसन्न करने के लिये आवश्यक मिथ्या प्रशंसा अथवा नीच कर्म करना चापलूसी है, पर प्रसंग पड़ने पर उचित रीति से दूसरों की आवश्यक प्रशंसा वा सेवा करना शिष्टाचार है। चापलूसी व शिष्टाचार के इस सूक्ष्म भेद पर ध्यान न देने से लोगों में भ्रमवश शिष्टाचार का अर्थ चापलूसी प्रचलित हो गया है। चापलूसी बहुधा अनुचित स्वार्थ-साधन के लिये आत्म-गौरव को त्याग कर मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति अथवा अभ्यास के आधार पर की जाती है, परन्तु शिष्टाचार स्वार्थ-साधन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रखता और उसमें आत्म-गौरव का दुर्लक्ष्य भी नहीं होता। सारांश में कहा जा सकता है कि उचित चापलूसी शिष्टाचार है और अनुचित शिष्टाचार चापलूसी है।

शिष्टाचार शिष्ट लोगों का आचार है। इसमें उन सब आचरणों का समावेश होता है, जो शिक्षित जनों के योग्य समझे जाते हैं और जिनके व्यवहार से किसी समाज वा व्यक्ति को अपना काम-काज स्वतंत्रता और सन्तोष के साथ करने का सुभीता रहता है। शिष्टाचार से मनुष्य की शिक्षा, रुचि और सभ्यता का पता लगता है। शिष्टाचारी व्यक्ति अपने कुल, जाति और देश की शोभा है। शिष्टाचार से अधिकांश में मनुष्य के स्वभाव की भी जाँच होती है। इसका पालन करनेवाले के प्रति लोगों में श्रद्धा, विश्वास और आदर होता है और वह अपने गुणों से

दूसरों में वैसे ही गुण उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। विनय और नम्रता में ऐसा प्रभाव है कि यदि मनुष्य इनका उपयोग आत्म-गौरव के साथ करे, तो अशिष्ट मनुष्य भी उसके साथ सहसा अशिष्ट व्यवहार करने का साहस न करेगा। शिष्टाचार से अनेक अवसरों और स्थानों पर शान्ति की स्थापना होती है और लड़ाई-झगड़ों तथा कड़ी बात-चीत का परिहार होता है।

बहुधा नवयुवक चाहे वे शिक्षित भी हों शिष्टाचार को स्वतंत्रता का बाधक समझते हैं। उनके मन में स्वतंत्रता की कदाचित् यह कल्पना रहती है कि मनमाना काम करना ही सच्ची स्वतन्त्रता है, चाहे उसमें दूसरों की अथवा स्वयं उन्हीं की कैसी ही हानि क्यों न हो। इस मिथ्या-भावना के वशीभूत होकर नवयुवक शिष्टाचार को यहाँ तक भुला देते हैं कि वे बहुधा बड़ों को प्रणाम करने में भी अपना अपमान समझते हैं। नवयुवकों को ध्यान रखना चाहिये कि सयानों को संसार की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का जो ज्ञान और अनुभव अनेक वर्षों के अवलोकन और परीक्षा से प्राप्त हुआ है, वह उन्हें (नवयुवकों को) विश्वविद्यालय की उपाधि के साथ नहीं मिल सकता।

जो बातें ऊपर नवयुवकों के विषयों में कही गई हैं, वे ही थोड़ा हेर-फेर के साथ संक्षेप में नवयुवतियों के विषय में भी कही जा सकती हैं। बहुधा तरुण महिलाएँ बूढ़ी

स्त्रियों का अनादर करती हैं; अथवा उनकी हँसी उड़ाती हैं। यह अनुचित और अशिष्ट व्यवहार है।

सहयोग, सहकारिता, मित्रता, परिचय, सामाजिक व्यवहार आदि में शिष्टाचार की बड़ी आवश्यकता है। इसके अभाव में पहले वैमनस्य और फिर विरोध अथवा वैर उत्पन्न होता है, जिसके कारण अनेक प्रकार की अनिष्ट घटनाएँ घटती हैं। जिस संघ शक्ति से समाज और राज के बहुत से कार्य संपादित होते हैं, वह कभी-कभी शिष्टाचार की अवहेलना से भग्न हो जाते हैं। अशिष्टता की प्रवृत्ति बहुधा वर्द्धनशील होती है, इसलिये इसे रोकना बहुत आवश्यक है; नहीं तो यह दुष्प्रवृत्ति मनुष्य को बहुधा असभ्यता, उद्दंडता, उच्छृंखलता, आदि दुर्गुणों के पंक में निमग्न कर देती है। इतिहास साक्षी है कि कभी-कभी शिष्टाचार के पालन से शांतिदायक और उसकी अवहेलना से भयंकर राजनीतिक परिणाम उपस्थित हुए हैं।

शिष्टाचार के अवसर और स्थान प्रायः असंख्य हैं तथा मनुष्य को पग-पग पर उसके पालन की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ जब कोई हमारे घर आता है, तब हमें उसे देखते ही—'आइये बैठिये, कहना चाहिये। यदि वह सम्मानित व्यक्ति है, तो उसके आने और जाने के समय हमें अपने स्थान से उठने की आवश्यकता है। फिर हमें अपना काम छोड़कर उससे कुशल-प्रश्न पूछना, पान-

सुपारी आदि से उसका आदर करना, प्रसन्न मुद्रा से उसकी बात-चीत सुनना आदि आवश्यक है। इस प्रकार थोड़े-थोड़े ही समय में शिष्टाचार के कई कार्य करने की आवश्यकता होती है।

देश, काल और पात्र का ध्यान रखते हुए शिष्टाचार के मुख्य तीन विभाग किये जा सकते हैं—(१) वचन-सम्बन्धी—(२) चेष्टा सम्बन्धी—(३) कर्म सम्बन्धी। आगे संक्षिप्त में प्रत्येक का विवरण दिया जाता है:—
वचनात्मक शिष्टाचार में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि श्रोता की मर्यादा के अनुकूल आदर-सूचक शब्दों का उपयोग किया जाये। बात-चीत में आत्म-प्रशंसा करने और अपने मुँह मियाँमिट्ठू बनने की प्रवृत्ति को रोकना चाहिये और यथासम्भव पर-निन्दा से विरत रहना चाहिये। किसी की बात काटना और उसकी भाषा की भूलें बताना भी शिष्टाचार के विरुद्ध है। शिष्टवार्त्ता में आवश्यकता से अधिक विनोद अशिष्ट समझा जाता है। मण्डली में लगातार किसी एक ही विषय पर और एक ही व्यक्ति के साथ सम्भाषण करने में अशिष्टता सूचित होती है। शिक्षित लोगों को शब्द के शुद्ध उच्चारण और सरल वाक्य-रचना पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

चेष्टात्मक शिष्टाचार-मनुष्य के मुख की मुद्रा तथा शरीर के अन्यान्य अवयवों के संचालन वा व्यापार से

सम्बन्ध रखता है। चेहरे पर सदैव गम्भीरता का भाव धारण करने से मनुष्य का मिथ्याभिमान भाषित होता है, इसलिये किसी से मिलने पर उसे थोड़ी बहुत मुस्कराहट प्रदर्शित करनी चाहिये। शोक में खिन्नता और श्रद्धा में नम्रता का भाव प्रकट करने की आवश्यकता है। किसी के प्रश्न का उत्तर शब्दों के बदले सिर हिलाकर देना असभ्यता का चिन्ह है। जब तक बहुत अधिक आवश्यकता न हो तब तक किसी को—विशेषकर स्त्रियों को—सिर या हाथ के संकेत से न बुलाना चाहिये।

क्रियात्मक शिष्टाचार में—उन सब कार्यों का समावेश होता है, जो एक मनुष्य किसी व्यक्ति या समाज के सुभीते के लिये करता है। मनुष्य को प्रत्येक कार्य में अपने पड़ोसी के सुभीते का सदैव ध्यान रखना चाहिये। सड़क पर बाईं ओर चलना चाहिये और वृद्धों तथा स्त्रियों को रास्ता दे देना चाहिये। किसी के घर के पास या उसके द्वार के सामने खड़े होकर जोर से बात-चीत करना अशिष्टता है। जब तक विशेष आवश्यकता न हो, तब तक किसी को बुलाने के लिये उसके घर के किवाड़ खटखटाना अशिष्टता का चिन्ह है। अपने घर आये हुए पाहुनों अथवा अथितों का शक्ति भर आदर-सत्कार करने में हमें कोई बात उठा न रखनी चाहिये।

पंचशील

प्राचीन भारत की आदर्श परम्परा के अनुसार राष्ट्र और राष्ट्रों के बीच परस्पर शिष्ट और सद्व्यवहार के लिये पंचशील–जिसकी विधिवत घोषणा भारत के प्रधान मंत्री श्रीजवाहरलाल नेहरू तथा चीन के प्रधान मन्त्री श्रीचाओ० एन० लाई ने सन् १९५४ में तिब्बत की समस्या को लेकर एक विवाद को तय करते हुए समझौता के रूप में की। इस समझौते में कुछ सिद्धान्त निश्चित किये गये, जिन पर दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्धों को आधारित करने के निर्णय थे। ये सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

(१) एक-दूसरे की प्रभुसत्ता और उनके राज्यों की सीमाओं के लिये आदर भाव रखना।

(२) अनाक्रमण।

(३) एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना।

(४) एक-दूसरे के हितों का ध्यान और परस्पर बराबरी का भाव रखना।

(५) शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व।

ये सिद्धान्त पंचशील के नाम से विख्यात हुए। २८ जून १९५४ के संयुक्त वक्तव्य में दोनों प्रधान मंत्रियों ने इन सिद्धान्तों की पुष्टि की और निश्चय किया

कि एशिया और संसार के अन्य देशों से सम्बन्ध बनाये रखने में भी इन्हीं सिद्धान्तों को लागू किया जाय। ये सिद्धान्त विभिन्न देशों के आपसी व्यवहार ही में नहीं, वरन् साधारण रूप से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में भी लागू किये जायें तो ये शान्ति और सुरक्षा के ठोस आधार बन सकेंगे और आज जो भय और शंका व्याप्त है, वह भी दूर हो जायगी और सब में भरोसा पैदा हो सकेगा।

'पंचशील' भारत के लिये नया नहीं है। हमारे देश में उसकी एक परम्परा रही है जिससे नेहरूजी प्रभावित रहे हैं। सम्राट् अशोक ने भी जीवन के सम्बन्ध में ऐसे ही कुछ सिद्धांत निर्धारित किये थे। 'पंचशील' शब्द भारत की देन है। कहना न होगा कि इस प्रकाश की प्राप्ति पंच-मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। पंचशील के पाँचों सिद्धान्तों में मानव-जीवन की मूल समस्याओं का मौलिक निदान छिपा हुआ है। जिस तरह सम्पूर्ण शरीर की रचना के लिये पंचतत्व यथा—क्षिति, जल, पावक, गगन तथा समीर की आवश्यकता होती है, उसी तरह अखण्ड शांति साम्राज्य की स्थापना के लिए पंचशील (शांति-पूर्ण सह-अस्तित्व, अनाक्रमण, आन्तरिक मामलों में अहस्त-क्षेप, समानता और परस्पर सहयोग, राष्ट्रीय अखंडता तथा सार्वभौम अधिकार) की अपेक्षा है। यह पंचामृत जिस दिन वसुंधरा के प्राण में प्रविष्ट हो जायगा, उसी दिन

वह निर्विघ्न तथा अमर हो जायगी ! तब न तो अणु बम का कुछ असर होगा और न तोपों की गड़गड़ाहट का ही। नीलकंठ महादेव की तरह वह विरोध और वैमनस्य का विष पान करने पर भी मृत्यु से मुक्त रहेगी।

नर-संहार के लिये विद्रोह के विकराल व्याल विज्ञान का दूध पीकर प्रतिक्षण अधिक बलशाली बनता जा रहा है। विनाश के इस कुटिल काल में आज का सचेतन मानव-समाज किसी ऐसे प्रकाश की प्रतीक्षा कर रहा है—जिसकी विभ्राट किरण शलाकाओं से युग-प्रपीड़न के तिमिर-व्रण फूटकर विनष्ट हो जायँ। विलक्षण विज्ञान के विलक्षण प्रयोगों और आपसी स्वार्थों की कठोर कालिमा में मानवता का अस्तित्व लुप्त होता जा रहा है और इस तिमिर देश में ज्योति का साम्राज्य कायम करने के लिए पंचशील के पवित्र मार्तण्ड की अपेक्षा है। आओ, महाप्रलय के निर्बन्ध प्लावन की इन उद्दाम लहरों पर जिनसे विश्व-युद्ध का विकट निनाद उद्घोषित हो रहा है-पंचशील की तरणी प्रवाहित कर दो—

अंधकार का ज्वार कठिन है,
मिटे न साहस लौ का;
बढ़े प्रलय के इस प्लावन में,
पंचशील की नौका।

———

तत्व पदार्थ परिचय

भगवान शंकराचार्य अपने 'तत्व बोध' में बताते हैं कि जगत का उपादान कारण सत् चित् आनंद रूप परमेश्वर हैं। वही माया के आवेश से जीव अवस्था को प्राप्त होता है, और पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश में अपना रूप देखता है। तत्व के बोध से वह पञ्चमहा-भूत से अपने को अलग समझता है।

इससे तत्व पदार्थ का जानना अति आवश्यक है। मोक्ष के साधन क्या हैं? नित्य पदार्थ और अनित्य पदार्थ का भिन्न-भिन्न ज्ञान, इस लोक के और परलोक के पदार्थ और उनसे होनेवाले फलों में वैराग्य, शम, दम आदि छवो पदार्थों का सम्पादन और मोक्ष पद की इच्छा, ये ही चारो साधन हैं।

नित्य पदार्थ और अनित्य पदार्थ का विवेक क्या है? नित्य पदार्थ केवल ब्रह्म है, उसको छोड़कर और जितने पदार्थ हैं सब अनित्य पदार्थ अर्थात् मिथ्या यानो असत हैं, इसी ज्ञान को नित्यानित्य-वस्तु-विवेक कहते हैं।

विराग किसे कहते हैं? इस लोक के और स्वर्ग आदि परलोक के सुख आदि भोग की इच्छा का त्याग करना। अर्थात् इस लोक और परलोक के सुख भोग की वासना को हटा देना। इसे विराग कहते हैं।

शम आदि साधनों की संपत्ति का क्या अर्थ है ? शम, दम, उपरम, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान, इन छओ साधनों का होना शम आदि साधन संपत्ति कहाती है। अर्थात् शम-शांति, दम-इन्द्रियों का रोकना, उपरम-कर्तव्य का अनुष्ठान, तितिक्षा-शीतादि का सहना, श्रद्धा-गुरु आदि के वाक्यों में विश्वास, समाधान-चित्त को एकाग्रता, ये ही छः साधन ।

आत्मा किसे कहते हैं ? स्थूल शरीर, सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर से अन्य, अन्नमय आदि पाचो कोशों से दूर और जाग्रत स्वप्न और सुषुप्तिरूप तीन अवस्थाओं का साक्षी होकर जो सत् चित् और आनंद स्वरूप हो रहता है उसे आत्मा कहते हैं। अर्थात् आत्मा वह है जो स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर से अलग है, जो अन्नमय, प्राणमय आदि पाँचो कोशों से दूर है, जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति का साक्षी है और जो सत् चित् आनंदरूप है।

स्थूल शरीर किसे कहते हैं ? पञ्चीकृत पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश आदि पाँचों महाभूतों से किया गया, कर्मों के द्वारा उत्पन्न सुख और दुःख आदि के भोगने का प्रधान आश्रय नाश होनेवाला और स्थिति, उत्पत्ति, वृद्धि, घटना, बढ़ना, ढीला पड़ना और नाश रूप छहों विकारवाला स्थूल शरीर कहलाता है। तात्पर्य यह है कि पृथिवी आदि पाँचों महाभूतों के पञ्चीकरण का यह

प्रकार है कि प्रथम आकाश को दो भागों में बाँटकर एक भाग को अलग रख देना। फिर दूसरे भाग को चार भाग में बाँटकर अलग रखे हुए आधे भाग को इसी प्रकार बाँटे गये वायु के भागों में मिला देना, इसी भाँति वायु का विभाग करके उसे तेज भाग में मिला देना. तेज भाग को बाँट कर जल भाग में मिला देना, जल को बाँटकर पृथिवी में मिला देना, इन भागों के मिलाव को पञ्चीकरण कहते हैं। इसी पञ्चीकरण अवस्था का नाम स्थूल शरीर है, जब फिर पृथिवी आदि भूतों के भागों को अलग-अलग करके अपने-अपने कारण महाभूतों में लीन कर देते हैं, तब स्थूल शरीर का नाश हो जाता है। इस स्थूल शरीर के सहायक उपादान कारण शुभ अशुभ कर्म हैं। शुभ अशुभ कर्मों से सुख-दुःख का भोग उत्पन्न होता है। स्थूल शरीर इनका भोग करता है। इस स्थूल शरीर की छः अवस्था होती है। प्रथम अवस्था अस्ति है। अस्ति शब्द का अर्थ है सत्ता, अर्थात् उत्पन्न होना। द्वितीय अवस्था जनन, अर्थात् उत्पन्न होना। तृतीय अवस्था वर्धन अर्थात् कदाचित् बढ़ना और कदाचित घटना। चतुर्थ अवस्था विपरिणाम अर्थात् क्रम से बढ़ना। पञ्चम अवस्था अपक्षय अर्थात् वृद्धि आदि होने पर शरीर का शिथिल होना और छठवीं अवस्था नाश अर्थात् शरीर का पात होना। इसी को लोग स्थूल शरीर कहते हैं।

सूक्ष्म शरीर किसे कहते हैं ? अपञ्चीकृत पृथिवी आदि पाँचों महानभूतों से बना, कर्मों से उत्पन्न सुख दुःख आदि के भोगने का साधन, पाँच ज्ञान इन्द्रियों के, पाँच कर्म इंद्रियों के, पाँच प्राणों के, एक मन के, और एक बुद्धि के, इस भाँति सत्रह कलाओं के साथ जो रहता है, वह सूक्ष्म शरीर कहाता है । अर्थात् सूक्ष्म शरीर में पञ्चमहाभूतों के पच्चीस भाग नहीं होते । कर्म उसका सहायक है । वह सुख दुःख का भोगनेवाला है । उसमें नेत्र, कर्ण, चिह्वा, नासिका, और स्पर्श, इन्द्रियाँ रहती हैं । वाक्, हस्त, पाद, गुदा, और उपस्थ भी रहते हैं । प्राण, व्यान, समान, उदान और अपान आदि प्राण भी रहते हैं । मन भी रहता है । और बुद्धि भी होती है । इन्हीं सत्रहों कलावाले शरीर को सूक्ष्म शरीर कहते हैं ।

श्रोत्र–कान, त्वक्–स्पर्श की इन्द्रिय, चक्षु–नेत्र, रसना–जिह्वा, और घ्राण–नासिका, ये पाँचों ज्ञान इन्द्रिय हैं । श्रोत इन्द्रिय की देवता दिशा है । त्वक् इन्द्रिय की देवता वायु है । चक्षु इन्द्रिय की देवता सूर्य है । रसना इन्द्रिय की देवता वरुण है । घ्राण इन्द्रिय की देवता अश्विनीकुमार है । श्रोत इन्द्रिय से शब्द का ज्ञान होता है । त्वक् इन्द्रिय से स्पर्श का ज्ञान होता है । चक्षु इन्द्रिय से शुक्ल आदि का ज्ञान होता है । रसना इन्द्रिय से मधुर आदि रस

का ज्ञान होता है। घ्राण इन्द्रिय से सुगन्धि और दुर्गन्धि का ज्ञान होता है।

वाक्-वाणी, पाणि-हस्त, पाद-चरण, पायु-गुदा, और उपस्थ-लिङ्ग, ये पाँचों कर्म इन्द्रिय हैं। वाक् इन्द्रिय की देवता अग्नि है। हस्त इंद्रिय की देवता इंद्र। पाद इन्द्रिय की देवता विष्णु हैं। पायु इन्द्रिय का देवता मृत्यु है। लिंग इंद्रिय का देवता प्रजापति है। वाक् इंद्रिय से बोलते हैं। हस्त से वस्तुओं को ग्रहण करते हैं। पैर से गमन करते हैं गुदा से मल त्याग करते हैं। लिङ्ग से मूत्र त्याग एवं विषयानंद करते हैं।

कारण शरीर किसे कहते हैं? अनिर्वाच्य और अनादि अविद्या रूप जो स्थूल और सूक्ष्म शरीर का केवल कारण है, जो सत्स्वरूप अज्ञान है और जिसमें किसी विशेषता का ज्ञान नहीं होता उसे कारण शरीर कहते हैं। तात्पर्य यह है। कि कारण शरीर कौन है? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि मायाकार शरीर है, माया अनिवर्चनीय है, अर्थात् उसका स्पष्ट अर्थ नहीं हो सकता, न तो उसे सत् कह सकते हैं, क्योंकि ब्रह्मज्ञान न होने पर उसका नाश हो जाता है, और न उसे मिथ्या कह सकते हैं, क्योंकि फिर उससे जगत की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती। इससे उसे अनिवर्चनीय स्वीकार करते हैं। माया अनादि भी है और उसकी उत्पत्ति भी नहीं होती।

यही माया सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर का कारण है । इसे सत-स्वरूप अज्ञान कहते हैं । इसमें किसी प्रकार के विशेष का सम्बन्ध नहीं होता । अतएव यही कारण शरीर है ।

तीन प्रकार की अवस्थाएँ कौन-कौन हैं । प्रथम जाग्रत अवस्था है, द्वितीय स्वप्न अवस्था है और तृतीय सुषुप्ति अवस्था है । जाग्रत अवस्था किसे कहते हैं ? श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना और घ्राण इन्द्रियों से जब शब्द, स्पर्श रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होता है, उसे जाग्रत अवस्था कहते हैं ।

स्थूल शरीर मेरा है यह अभिमान करने वाला आत्मा विश्व कहलाता है । यद्यपि स्थूल शरीराभिमानी आत्मा अपनी अवस्था से भिन्न ही है । क्योंकि वह नित्य है और उसकी अवस्था तथा स्थूल शरीर मिथ्या है तो भी स्थूल शरीर का अभिमान करने से आत्मा का नाम विश्व पड़ जाता है ।

स्वप्न अवस्था किसे कहते हैं ? जागते हुए जो कुछ दिखाता है वा जो कुछ जाना जाता है उससे आत्मा में एक प्रकार की वासना उत्पन्न हो जाती है । निद्रा लग जाने पर इसी वासना के प्रभाव से जो संसार देख पड़ता है वही स्वप्नावस्था है, उसी को कोई सूक्ष्म शरीर के अभिमान करने वाले प्रकाशमान भोक्ता और साक्षी आत्मा को तैजस कहते हैं ।

सुषुप्ति अवस्था किसे कहते हैं ? मैं कुछ नहीं जानता मैंने बड़े सुख से निद्रा की, यह ज्ञान जिस अवस्था में होता है वह अवस्था सुषुप्ति कहाती है। तात्पर्य यह है कि सुषुप्ति अवस्था में निद्रा सुख के सिवाय और किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं रहता। तब भी आत्मा का प्रकाश बना रहता है। इससे सुषुप्ति के बाद कहता है कि मैं सुख से सोया मुझे और कुछ नहीं जान पड़ता था। यह कहना ही इस बात का साक्षी है कि उसे उस समय भी सूक्ष्म ज्ञान था, परंतु निद्रा के वेग से वह स्पष्ट स्पष्ट किसी वस्तु का ज्ञान नहीं कर सकता था। सुषुप्ति के बाद फिर पूर्व ज्ञान लौट आता है। इससे जिस समय विशेष ज्ञान न हो केवल ज्ञान ही हो उस समय को सुषुप्ति कहते हैं। इस अवस्था को कारण शरीर और आनन्दमय कोष भी कहते हैं। कारण शरीर के अभिमानी आत्मा को प्राज्ञ अर्थात् इंद्रियों की सहायता के बिना ही स्वप्न कथा से वासना रूप विषयों का भोगने वाला आत्मा कहते हैं।

पाँचों कोश कौन-कौन हैं ? अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, और आनन्दमय कोश—ये पाँचों कोश हैं, शब्द का अर्थ है आच्छादन करना, और ये पाँचों आत्मा के आच्छादन करनेवाले हैं, इससे कोश कहाते हैं।

अन्नमय कोश किसे कहते हैं ? अन्न के रस से ही

जो उत्पन्न होता है, अन्न के रस में जो बढ़ता है, और रूप पृथ्वी में जो लीन हो जाता है उसे अन्नमय कोश अर्थात् स्थूल शरीर कहते हैं। प्राणमय कोश किसे कहते हैं? प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान रूप पाँचों प्राणवायु समूह को और वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ रूप पाँचों कर्मेन्द्रियों को प्राण मय कोश कहते हैं। प्राणमय कोश का दूसरा नाम क्रिया शक्ति भी है क्योंकि प्राणमय कोश के सहारे ही शरीर की सब क्रिया होती है।

मनोमय कोश किसे कहते हैं? मन और श्रोत्र, त्वक् जिह्वा और घ्राणरूप पाँचों ज्ञान इन्द्रियों के मिलने से जो कोश होता है, उसे मनोमय कोश कहते हैं। इसे इच्छाशक्ति भी कहते हैं। मनोमय कोश की सहायता से ही आत्मा में इच्छा उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि मन का स्वरूप ही संकल्प विकल्प वाला है और संकल्प विकल्प इच्चारूप है। इसलिये आत्मा में इच्छा का होना मनोमय कोश की सहायता से होता है।

विज्ञानमय कोश किसे कहते हैं? बुद्धि और सब त्वक्, चक्षु, जिह्वा, और घ्राणरूप पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के मिलने से जो प्रकाश उत्पन्न होता है, उसे विज्ञानमय कोश कहते हैं। इसका दूसरा नाम ज्ञान शक्ति भी है क्योंकि बुद्धि और पाँचों ज्ञान इन्द्रियों की ही सहायता से आत्मा को सब पदार्थों का ज्ञान होता है।

आनन्दमय कोश किसे कहते हैं ? इसी भाँति कारण शरीर रूप अविद्या में रहनेवाला, रज और तम गुण के संयोग से मलिन और प्रिय तथा मोद आदि वृत्तियोंवाला जो कोश है उसे आनन्दमय कोश कहते हैं। इस कोश का आनन्दमय नाम इसी कारण से हुआ कि प्रिय और इष्ट पदार्थ की प्राप्ति से मुदित और सुखित होता है। जब मोद और सुख होता है तो आनन्द की मात्रा अधिक मालूम पड़ती है। बस यही कारण है कि इसे आनन्दमय कोश अर्थात् अधिक आनन्दवाली अवस्था कहते हैं।

पहिले कहे हुए पाँचो कोश पञ्चकोश कहे जाते हैं। आत्मा स्वयं मेरा शरीर, मेरे प्राण, मेरा मन, मेरी बुद्धि और मेरा ज्ञान, यह जानता है। यही ज्ञान आत्मा को शरीर आदि से भिन्न करता है जैसे मेरा घर, मेरा कङ्कण, मेरा कुण्डल, यह ज्ञान गृह आदि को ज्ञाता से भिन्न सिद्ध करता है, न कि वे स्वयं ज्ञाता बन जाते हैं, ऐसे ही मेरा शरीर, इत्यादि ज्ञान भी अपने को ज्ञाता से भिन्न सिद्ध करते हैं, यह सिद्धि मम शब्द के प्रभाव से होता है। कोई भी कदापि ऐक्य होने पर मेरा शब्द नहीं कहता, जहाँ आप अलग रहकर केवल अपना सम्बन्ध जताना रहता है, वहीं मेरा शब्द बोला जाता है। मेरी पुस्तक, मेरी लेखनी, इत्यादि शब्दों का यही अर्थ है कि लेखनी मुझसे भिन्न है, परन्तु मेरा इसके साथ स्वामिपना का संबंध है।

तस्मात् 'मम शब्द' के उच्चारण करनेवाले के संबंधी समझे जाते हैं, वैसे ही मेरे पाँचों कोश. इस प्रकार से ज्ञाता के संबंधवाले पञ्चकोश, आत्मा उनसे भिन्न है। उनका साक्षी है और पञ्चकोश माया के खिलवाड़ हैं। यह वार्त्ता सिद्ध हो गई।

तब फिर—आत्मा किसे कहते हैं ? जो सतरूप चित-रूप और आनंदरूप है उसे आत्मा कहते हैं।

सत् किसे कहते हैं ? भूतकाल, भविष्यतकाल, और वर्त्तमानकाल में जो बिगड़ता नहीं किंतु सदा एकरस रहता है, उसे सत् कहते हैं। चित्त शब्द का क्या अर्थ है ? जो ज्ञान स्वरूप है उसे चित् कहते हैं। चित् शब्द का अर्थ है प्रकाश और प्रकाश ज्ञान में रहता है। इससे ज्ञान स्वरूप से जो सब का अनुभव करनेवाला है, वही चित् शब्द का अर्थ है। आनंद शब्द का क्या अर्थ है ? जो सदा सुखरूप है वह आनंद का अर्थ है। अर्थात् जो कभी भी दुःख से छुआ नहीं जाता वही कूटस्थ परब्रह्म नित्यानंदरूप है, और उसे ही दूसरे शब्द में सुखरूप कहते हैं। इस भाँति आत्मा को सत्‌रूप, चितरूप, और आनंदरूप जाने। तात्पर्य यह है कि आत्मा को नित्य ज्ञान स्वरूप, और कूटस्थ समझकर जगत् को मिथ्या समझे।

अब (मैं) माया से उत्पन्न होनेवाले चौबीस तत्वों की उत्पत्ति के उपाय को कहता हूँ।

सत्त्वगुण, रजोगुण, और तमोगुणवाली और पर-ब्रह्म के आधार पर रहनेवाली माया है। अर्थात् जब सत्त्व रज और तमरूप गुणों में किसी प्रकार की न्यूनता वा अधिकता नहीं जान पड़ती किंतु केवल समानता मालूम पड़ती है, उसी अवस्था का नाम माया है। सांख्य मतवाले इसे ही मूल प्रकृति, प्रधान और स्वभाव आदि शब्दों से स्मरण करते हैं। इसी माया के सहायक ब्रह्म के प्रभाव से आकाश उत्पन्न होता है। आकाश से वायु उत्पन्न होता है. वायु से तेज उत्पन्न होता है। तेज से जल उत्पन्न होता है। जल से पृथिवी उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि माया एक प्रकार की शक्ति है। जिसके सम्बन्ध भ्रम से परब्रह्म में एक प्रकार की कर्तृता जान पड़ती है। वह कर्तृता सम्बन्ध भ्रम से जान पड़ती है, इससे प्रथम आकाश उत्पन्न होता है। आकाश एक पोला पदार्थ है। इससे वायु उत्पन्न हो जाता है। वायु और आकाश की परस्पर रगड़ से अग्निरूप तेज उत्पन्न होता है। अग्नि की उष्मा से वाष्परूप जल उत्पन्न होता है। जल की परस्पर रगड़ से पृथिवी उत्पन्न होती है।

इन पाँचों तत्वों में से आकाश के सत्वगुण भाग में से श्रवण-(कान) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। वायु के सत्वगुण से त्वक् (स्पर्श) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। अग्नि के सत्व गुण के भाग से चक्षु (नेत्र) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। जल

के सत्वगुण भाग से रसना—(जिह्वा) इन्द्रियं उत्पन्न हुई है। इन आकाश आदि पाँचों तत्वों के मिले हुए सत्व के गुण के भाग से मन बुद्धि अहंकार और चित्रूप चार अंतःकरण उत्पन्न हुए हैं।

चार प्रकार के अंतःकरण में मन उसे कहते हैं, जिससे यह काम करूँ ऐसा संदेह उत्पन्न होता है। यह कार्य अवश्य कर्तव्य है, यह ज्ञान जिससे होता है, उसे बुद्धि कहते हैं। यह कार्य किया, यह अहंकाररूप ज्ञान जिससे होता है उसे अहंकार कहते हैं। सम्पूर्ण पदार्थों को जिससे चिंता व विचार होता है उसे चित्त कहते हैं। यद्यपि अंतःकरण एक ही है तो भी संकल्प, निश्चय, अहं-कार, और चिंतनरूप कार्य के भिन्न होने से चार प्रकार का कहा जाता है। मन का देवता चंद्रमा है। बुद्धि का देवता ब्रह्म है। अहंकार का देवता रुद्र (महादेव) है। चित्त का देवता वासुदेव (विष्णु) हैं।

इन पाँचों तत्वों के मध्य में से आकाश के रजोगुण के भाग से वाक्-(वाणि) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। वायु के रजोगुण के भाग से पाणि (हाथ) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। अग्नि के रजोगुण के भाग से पाद (पैर) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। जल के रजोगुण के भाग से उपस्थ (पुरुष) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। पृथिवी के रजोगुण के भाग से गुदा इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। इन आकाश आदि पाँचों

भूतों के मिले हुए रजोगुण के भाग से प्राण, अपान, व्यान, समान, और उदान, नाम के पाँच प्राण उत्पन्न हुए हैं। आकाश आदि पाँचों महाभूतों के तमोगुण के भाग से पञ्चीकरण किये गये पाँच तत्व उत्पन्न होते हैं। इस भाँति चौबीस तत्वों की उत्पत्ति होती है। इनमें आकाश आदि पाँचों महाभूतों के सत्वगुण के भाग से पाँच ज्ञान इन्द्रिय और चार अंतःकरण उत्पन्न होते हैं। सब के योग से नौ तत्व होते हैं। इसी प्रकार तत्व आकाश आदि पाँचों के रजोगुण के भाग से पाँच पञ्चीकृत तत्व उत्पन्न हुए। अब सब की संख्या जोड़ने से चौबीस संख्या हो जाती है। पञ्चीकरण किस प्रकार होता है ? इसका उत्तर यह है कि इन पाँचों महाभूतों के तमोगुणरूप एक-एक भूत भाग को दो-दो भाग में बाँट देना। इन बाँटे हुए भागों में से एक-एक भाग को चुपचाप अलग कर देना बाकी के एक भाग को चार भागों में बाँट देना। अब अलग रखे हुए अपने आधे भाग को इन भागों में मिला देना। यही पञ्चीकरण होता है। यदि कहो कि इस मिलान के मिलान से तो सब महाभूतों में सब का भाग आ गया। अब यह पृथिवी है। यह आकाश है। यह भेद कैसे सिद्ध होगा ? तो इसका यह समाधान है कि अवश्य एक-एक में औरों का भाग आ जाता है तब भी जिसमें जिसका भाग अधिक होता है उसका वही नाम होता है। जिसमें पृथिवी का

भाग अधिक रहेगा और औरों का कम होगा वह पृथ्वी। इस प्रकार औरों में भी जानों। जैसे (पहलवानों का ग्राम) यह कहने से सुननेवाला समझता है कि इस गाँव में पहलवान अधिक हैं। और दूसरे लोग कम हैं। ऐसे ही महाभूतों के विषय में समझना उचित है। इन पञ्चीकृत पाँच भूतों से स्थूल शरीर उत्पन्न होता है। इस प्रकार पिण्ड (स्थूल शरीर) और ब्रह्माण्ड की एकता सिद्ध होती है। ब्रह्माण्ड भी स्थूल शरीर के समान पञ्चीकृत पाँच महाभूतों से उत्पन्न होता है।

स्थूल शरीर का अभिमान करनेवाला अर्थात् उसे अपना समझनेवाला ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव कहलाता है। वह अपने स्वभाव के अनुसार ईश्वर को अपने रूप से भिन्न समझता है, अविद्या के संयोग से आत्मा जीव कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि जीव वस्तुतः ब्रह्म ही है परन्तु वह जब स्थूल शरीर अभिमान करता है तब दर्पण के प्रतिबिम्ब के समान वह जीव समझा जाता है। प्रतिबिंब होने के कारण अज्ञान है। जैसे थाली में भरे हुए जल में सूर्य का प्रतिबिंब (परछाँही) देखकर लोग उसे तब तक आकाश में रहनेवाले सूर्य से अलग समझते हैं जब तक थाली हटा नहीं ली जाती, परंतु थाली के हटाते ही प्रतिबिंब का दर्शन नहीं होता केवल सूर्य रह जाता है, वैसे ही स्थूल शरीर के अभिमान नाश हो जाने पर जीव नाम

नहीं रहती तब इसका कारण अज्ञान ही है। इसी से जीवाभिमानी आत्मा ईश्वर को दूसरा समझता है। और अज्ञान से हुए कार्य को अपना कार्य समझ कर उनके शुभ और अशुभ कर्मों को भोगता है। तात्पर्य यह है कि अविद्या से घिरा हुआ आत्मा ही जीव है, वह और नहीं है। जब अविद्या का नाश हो जाता है अर्थात् जब ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, तब वही अपने को ब्रह्म-ब्रह्म कहने लगता है। जैसे कोई पुरुष अपने गले में पड़े हार को अज्ञान से खोया हुआ समझ कर उसे ढूँढ़ता फिरता है, परंतु जब उसका हाथ अपने गले पर फिर जाता है तब वह चुपचाप अपनी राह लग जाता है, किसी से कुछ नहीं कहता, वैसे ही जीव भी ज्ञान होने पर अपने स्वरूप को देखने लग जाता है इसी स्वरूप दर्शन को ब्रह्म प्राप्ति कहते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि माया और अविद्या का भेद इतना ही है कि सत्वगुण की अधिकता में माया नाम है, रज वा तमोगुण की अधिकता में अविद्या नाम है।

माया में जो ब्रह्म का प्रतिबिंब है, उसे ईश्वर कहते हैं। इसे ही वैयासिक लोग जगत् का कर्त्ता अर्थात् निमित्त कारण कहते हैं। इस प्रकार अविद्या और मायारूप धर्म के भेद से जब तक अविद्या में ब्रह्म के प्रतिबिंब को जीव, और माया में ब्रह्म के प्रतिबिंब को ईश्वर कहा करते हैं, तब तक संसार से छुटकारा नहीं होता। संसार का अर्थ है बार-बार

जन्म लेना और मरना। और वह तब तक बराबर बना रहता है, जब तक भेद बुद्धि नहीं छूटती। इसलिये (जीव) और ईश्वर को भिन्न नहीं समझना, किंतु उन दोनों के भेद को मिथ्या समझ कर एकता बुद्धि करनी है।

यहाँ यह शंका होती है कि जीव का स्वरूप अहंकारी और अल्पज्ञ है और ईश्वर का स्वरूप निरहंकारी और सर्वज्ञ है। इन दोनों की एकता (तत्वमसि) 'तू वही है' इस महावाक्य से कैसे होवेगी। क्योंकि यह दोनों भिन्न भिन्न धर्मवाले हैं। जो-जो भिन्न धर्मवाले होते हैं उनकी एकता कभी नहीं होती है। जैसे अग्नि और जल इनकी एकता नहीं होती।

इस शंका का यह समाधान है कि स्थूल और सूक्ष्म शरीर का जो अभिमानी है वह त्वं शब्द का वाच्य अर्थ है, और माया तथा अविद्या धर्म से रहित और समाधि अवस्थावाला शुद्ध चैतन्य त्वं शब्द का लक्ष्य अर्थ है। अब विचारना चाहिये कि त्वं शब्द का दोनों अर्थ हुआ, एक वाच्य अर्थ और दूसरा लक्ष्य अर्थ, वाच्य और लक्ष्य दो नहीं होते। जैसे घट शब्द का वाच्य अर्थ घड़ा है अर्थ लक्ष्य अर्थ मृत्तिका (मिट्टी) है और जो मृत्तिका है वही घड़ा है। ऐसे ही तत् शब्द का भी वाच्य अर्थ माया और अविद्यावाला जीव है और लक्ष्य अर्थ शुद्ध ब्रह्म है। अब हमें (तत्वमसि) इस वाक्य की ओर देखना चाहिये कि

इसका क्या अर्थ है ? इसके विचार से हमें यह जान पड़ता है कि जो सर्वज्ञ ईश्वर है वही तू है। इस अर्थ के देखने से हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि जीव ब्रह्म की एकता जानने के समय दोनों में कोई धर्म का ज्ञान बाकी नहीं रहता इससे कोई शंका नहीं बच जाती। इस भाँति सर्वज्ञ आदि धर्मवाला ईश्वर तत् शब्द का वाच्य अर्थ है, और सर्वज्ञत्व आदि धर्म के बिना जो शुद्ध चैतन्य है वह तत् शब्द का लक्ष्य अर्थ है। इस प्रकार धर्मवाले ईश्वर की एकता में कोई दोष नहीं आता। क्योंकि धर्म को अलग कर देने में दोनों ओर चैतन्य मात्र रहता है और स्वभाव से एक ही है। इस प्रकार 'तू वही है' 'मैं ब्रह्म हूँ' इत्यादि वेदांत के महावाक्यों से और सद्गुरु के उपदेश से जिनको सब प्राणियों में ब्रह्मज्ञान हो गया है वही जीवन्मुक्त है। आशय यह है कि जीवन्मुक्त वही महापुरुष है, जिसे ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता और श्वपाक में अपना ही स्वरूप दिखाता है। इस समय न तो उसे स्पर्शास्पर्श का विचार होता है, न वह ब्राह्मण को पवित्र और कुत्ते को अपवित्र समझता है, उसे किसी वस्तु के लाभ से न हर्ष होता है न किसी के नष्ट होने से दुःख होता है, और न वह अपने और पराये में कुछ अन्तर समझता है। तात्पर्य यह है कि वह सब द्वन्दों से छूट जाता है।

जीवन्मुक्त किसे कहते हैं ? जैसे मैं देह हूँ, मैं पुरुष

हूँ, मैं ब्राह्मण और मैं शूद्र हूँ, यह दृढ़ निश्चय है, इसी भाँति न मैं ब्राह्मण हूँ, न शूद्र हूँ और न पुरुष हूँ किंतु मैं किसी से सङ्ग न रखनेवाला, सत और आनंद स्वरूपवाला, प्रकाश स्वरूपवाला, सब जीवों का अंतर्यामी और चित्त प्रकाशस्वरूप हूँ यह दृढ़ ज्ञान का प्रत्यक्ष जिसे होता है वही जीवन्मुक्त 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रत्यक्ष ज्ञान के हो जाने से सब प्रकार के कर्मों के बंधनों से छूट जाता है।

कर्म कै प्रकार के हैं ? इसका उत्तर यह है कि कर्म तीन प्रकार के हैं। प्रथम आगामि कर्म, द्वितीय सञ्चित कर्म, और तृतीय प्रारब्ध कर्म हैं। ज्ञान हो जाने के बाद ज्ञानी के शरीर से किया गया जो पुण्य और पाप कर्म वह आगामि कर्म कहा जाता है।

सञ्चित कर्म किसे कहते हैं ? अनेक करोड़ जन्मों का जो बीज अर्थात् मुख्य कारण है, और जो अनेक जन्मों से बटोरा गया है उसे सञ्चित कर्म कहते हैं। प्रारब्ध कर्म किसे कहते हैं ? जो कर्म इस शरीर को उत्पन्न करता है, और इस लोक में अनेक प्रकार के सुख और दुःख देता है उसे प्रारब्ध कर्म कहते हैं। प्रारब्ध कर्म का भोग करने से ही नाश होता है क्योंकि कहा है 'प्रारब्ध' कर्मों का भोग करने से ही क्षय होता है। वस्तुतः ज्ञान होने पर उसका भी नाश हो जाता है। मैं ब्रह्म हूँ, इस दृढ़ ज्ञान से सञ्चित कर्म नष्ट हो जाता है। आगामि कर्म का ज्ञानी के साथ

उसी प्रकार संबंध नहीं होता जैसे कमल के पत्ते से जल का संबंध नहीं रहता।

इस प्रकार आत्मज्ञानी संसारसागर से पार होकर इसी जन्म में ब्रह्मानंद को पाता है। क्योंकि ब्रह्मज्ञानी शोक समुद्र को पार कर जाता है। यह श्रुति में लिखा है।

निराकार और साकार का क्या भेद है? जिसका कोई आकार या स्वरूप न व्यक्त हो सके वह निराकार, और जो स्वरूप में दृश्यमान हो सके वह साकार है। जैसे कि 'शब्द' निराकार और 'अक्षर' साकार, जीव या आत्मा निराकार और शरीर साकार। उदाहरण के लिये कह सकते हैं कि चेतन सत्ता निराकार और जड़ सत्ता साकार है। (ब्रह्म ईश्वर परमात्मा) जड़ और चेतन दोनों में विद्यमान है इसलिये उसे निराकार और साकार भी स्वीकार करते हैं।

जैसे कि एक बट वृक्ष विशाल रूप में साकार दृश्यमान है, पर उसका वह साकार रूप उसके दाने (बीज) के भीतर नहीं दिखाई देता, पर ज्ञान के द्वारा यह समझा जा सकता है कि इस सूक्ष्म दाने के अंदर वह शक्ति तत्व विद्यमान है जो जल और मिट्टी का संयोग पाकर इतने बड़े बट-वृक्ष को जन्म दे सकता है। यही निराकार और साकार का भेद है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्य ते ॥ (बृहदार० उ०)

अर्थात्—वह सच्चिदानंद घन परब्रह्म पुरुषोत्तम सब प्रकार से सदा सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत भी उस परब्रह्म से पूर्ण ही है; क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्म की पूर्णता से जगत पूर्ण होने पर भी वह परब्रह्म परिपूर्ण है। उस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल लेने पर भी वह पूर्ण ही बच रहता है।

जिस प्रकार एक बट वृक्ष अपने में पूर्ण है और उसमें लगे अनेकों फलों के प्रत्येक फल में के अनेकों दानों में से प्रत्येक दाना भी उतने ही बड़े बटवृक्ष को उत्पन्न करने की शक्ति अपने में विद्यमान रखने के कारण वह अपने में पूर्ण है। जिस प्रकार बटवृक्ष भी पूर्ण है और उसके प्रत्येक फल भी पूर्ण हैं और प्रत्येक फल के दाने भी पूर्ण हैं। इसी प्रकार यह ब्रह्म भी कनेक रूप और अनेक प्रकार का होते हुए भी वह हर प्रकार से पूर्ण ही है।

स्थिर बुद्धि के लक्षण

गीता में भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन पूछते हैं—

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत जित किम् ॥
(गीता अध्याय २)

अर्थात् हे केशव! स्थितप्रज्ञ अथवा समाधिस्थ के क्या लक्षण होते हैं? स्थितप्रज्ञ कैसे बोलता, बैठता और चलता है?

भगवान श्रीकृष्ण बताते हैं—

प्रजाहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान्,
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थित प्रज्ञास्तदोच्यते।

(गीता २ अध्याय)

अर्थात् हे पार्थ! जब मनुष्य मन में उठती हुई सभी कामनाओं का त्याग कर देता है और आत्मा द्वारा ही आत्मा में संतुष्ट रहता है, तब यह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। दुःख में जो दुःखी न हो, सुख की इच्छा न रखे, और राग, भय और क्रोध से रहित हो, उसे मुनि और स्थिर बुद्धि कहते हैं। सर्वत्र रागरहित होकर जो पुरुष शुभ या अशुभ की प्राप्ति में न हर्षित होता है, न शोक करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।

कछुआ जैसे सब ओर से अंग समेट लेता है, वैसे ही जब यही पुरुष इन्द्रियों को उनके विषयों से समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर हुई कही जाती है। देहधारी जब निराहार रहता है तब उसके विषय मंद पड़ जाते हैं, परंतु रस नहीं जाता। वह रस तो ईश्वर का साक्षात्कार होने से ही शांत होता है। हे कौंतेय! चतुर पुरुष के उद्योग करते रहने पर भी इन्द्रियाँ ऐसी प्रयत्नशील हैं कि वे

उसके मन को भी बलात्कार हर लेती हैं। इन सब इंद्रियों को वश में रखकर योगी को मुझमें तन्मय ही रहना चाहिये, क्योंकि अपनी इंद्रियाँ जिसके वश में हैं उसकी बुद्धि स्थिर है। विषयों का चिंतन करनेवाले पुरुष को उनमें आसक्ति होती है, आसक्ति से कामना होती है, और कामना से क्रोध होता है। क्रोध से मूढ़ता उत्पन्न होती है, मूढ़ता से स्मृति भ्रांति हो जाती है, स्मृति भ्रांति हो जाने से ज्ञान का नाश हो जाता है और जिसका ज्ञान नष्ट हो गया वह मृतक तुल्य है। परंतु जिसका मन अपने अधिकार में है और जिसकी इंद्रियाँ रागद्वेष-रहित होकर उसके वश में रहती हैं, वह मनुष्य इंद्रियों का व्यापार चलाते हुए भी चित्त की प्रसन्नता प्राप्त करता है। चित्त प्रसन्न रहने से उसके सब दुःख दूर हो जाते हैं। जिसे प्रसन्नता प्राप्त हो जाती है, उसकी बुद्धि तुरंत ही स्थिर हो जाती है।

जिसे समत्व नहीं, उसे विवेक नहीं। जिसे विवेक नहीं, उसे भक्ति नहीं और जिसे भक्ति नहीं उसे शांति नहीं है। और जहाँ शांति नहीं वहाँ सुख कहाँ से हो ?

विषयों में भटकानेवाले, इंद्रियों के पीछे जिसका मन दौड़ता है, उनका मन, जैसे वायु नौका को जल में खींच ले जाता है वैसे ही उसकी बुद्धि को जहाँ चाहे खींच ले जाता है।

इसलिये हे महाबाहो ! जिसकी इंद्रियाँ चारों ओर

के विषयों से निकल कर अपने वश में आ जाती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है। जब सब प्राणी सोते रहते हैं, तब संयमी जागता रहता है। जब सब लोग जागते रहते हैं, तब ज्ञानवान मुनि सोता रहता है। नदियों के प्रवेश से भरते रहने पर भी जैसे समुद्र अचल रहता है, वैसे ही जिस मनुष्य में संसार के भोग शांत हो जाते हैं, वही शांति प्राप्त करता है, न कि कामनावाला मनुष्य। सब कामनाओं का त्याग करके जो पुरुष इच्छा, ममता, और अहंकार-रहित होकर विचरता है वही शांति पाता है।

हे पार्थ! ईश्वर को पहचाननेवाले की स्थिति ऐसी होती है कि उसे पाने पर फिर वह मोह के वश नहीं होता और यदि मृत्युकाल में भी ऐसी स्थिति टिकी रहे, तो वह ब्रह्मनिर्वाण पाता है।

जितेंद्रिय उसको कहते हैं कि जो स्तुति सुनकर हर्ष और निंदा सुनकर शोक, अच्छा स्पर्श करके सुख, दुष्ट-स्पर्श से दुःख, न करे, सुंदर रूप देखकर प्रसन्न और दुष्ट रूप देखकर अप्रसन्न न हो, उत्तम भोजन करके आनंदित और निकृष्ट भोजन करके दुःखित न हो। सुगन्ध में रुचि और दुर्गन्ध में अरुचि नहीं करता है।

सब इंद्रियों में यदि एक भी विषय में फँस जाती है तो उस (एक ही इंद्रिय के दोष) से उसकी (विषयी पुरुष की) (अन्य इंद्रियों की) प्रज्ञा तत्व ज्ञान भी नष्ट

हो जाता है। जैसे कि चर्म जलपात्र (मसक) में एक ही छिद्र के हो जाने से सारा पानी निकल (बह) जाता है। ब्रह्मचारी पुरुष सब इंद्रियों को वश में कर और आत्मा के साथ मन को संयुक्त करके योगाभ्यास से शरीर को किंचित पीड़ा देता हुआ अपने सब प्रयोजनों को सिद्ध करे इसलिये ब्रह्मचारी पाँच कर्मेन्द्रिय पाँच ज्ञानेंद्रिय और ग्यारहवें मन को अपने वश में करके युक्ताहार-विहार योग से शरीर की रक्षा करता हुआ सब अर्थों को सिद्ध करे।

शुभ-आदेश

कल्याण-मार्ग के पथिकों के लिये—

काशी के श्री स्वामी श्रद्धानंद सरस्वती का शुभ-आदेश—

१—नित्य प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व निद्रा का त्याग करो।

२—प्रतिदिन अपने से बड़ों का अभिवादन करो।

३—नित्य ईश्वर की प्रार्थना करो।

४—अतिथि यज्ञ करो।

५—पर-निंदा कभी न करो।

पढ़ो और आचरण में लाओ ये उपदेश वेद तथा शास्त्रानुकूल हैं।

आत्म-साधना के सतपथ में-

बड़े भाग्य हे बहिन, बन्धुओं, जीवन सफल बनायें हम ।
आत्म-साधना के सतपथ में धर्म-व्रती बन पायें हम ॥
अपरिग्रह अस्तेय अहिंसा, सच्चे सुख के साधन हैं ।
सुखी देख लो सन्त अकिंचन संयम ही जिनका धन है ।
उसी दिशा में दृढ़ निष्ठा से, क्यों नहीं कदम बढ़ायें हम ॥
जो यदि व्यापारी होंगे तो, प्रामाणिकता रखेंगे ।
राज्य कर्मचारी जो होंगे, रिश्वत कभी न खायेंगे ।
दृढ़ आस्था आदर्श नागरिकता, के नियम निभायें हम ॥
गृहणी हो गृहपति हो चाहे, विद्यार्थी अध्यापक हो ।
वैद्य वकील शील हो सबमें, नैतिक निष्ठा व्यापक हो ।
धर्मशास्त्र के धार्मिकपन को, आचरणों में लायें हम ॥
अच्छा हो अपने नियमों से, हम अपना कन्ट्रोल करें ।
मत ना दूजे वध बन्धन से, मानवता की शान हरें ।
यह विवेक मानव का निजगुण इसका गौरव गायें हम ॥
आत्म शुद्धि के व्रत पालन में, तन मन अर्पण कर देंगे ।
कड़ी जाँच हो लिये व्रतों में, आँच नहीं आने देंगे ।
भौतिकवादी प्रलोभनों में, कभी न हृदय लुभायें हम ॥
सुधरे व्यक्ति समाज व्यक्ति से उसका असर राष्ट्र पर हो ।
जाग उठे जन जन का मानस, ऐसी जागृति घर घर हो ।
'सत्यमेव जयते' मंत्र की, 'विजय' ध्वजा फहरायें हम ॥

प्रार्थना

मन की शुद्धि, बुद्धि के विकास, एवं कर्तव्य मार्ग में सहायक तथा आत्मोन्नति के लिये—

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय,
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
नमोऽद्वैत तत्वाय मुक्तिप्रदाय,
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय।

जगत् के कारणरूप और सतस्वरूप हे प्रभो! तुम्हें नमस्कार है। सब लोगों के आश्रय, हे चितस्वरूप, तुम्हें नमस्कार है। ऐसे शाश्वत और सर्वव्यापी ब्रह्म को मेरा नमस्कार।

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं,
त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम्।
त्वमेकं जगत्कर्तृ पातृप्रहर्तृ,
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्।

तू ही एक शरण लेने योग्य है - आश्रय स्थान है, तू अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान है। तू ही इस सृष्टि का उत्पन्नकर्ता, तू ही पालनकर्ता और तू ही संहारकर्ता है, और तू ही एक निश्चल एव निर्विकल्प है।

भयानां भयं भीषणं भीषणानां,
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।

महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं,
परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम् ।

तू भयों का भी भयकारक है, भयंकर से भी भयंकर है, तू प्राणिमात्र की गति है और पवित्र वस्तुओं को भी पवित्र करनेवाला है। श्रेष्ठ स्थानों का तू ही एकमात्र नियन्ता है। तू परे से भी परे है और रक्षकों का भी रक्षक है।

वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो,
वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालंममीशं,
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ।

हम तेरा स्मरण करते हैं और तेरा भजन करते हैं, तू जगत् का साक्षी रूप है, तुझे हम नमस्कार करते हैं। सत्स्वरूप, एकमात्र साधन और किसी का भी आधार न लेनेवाले, संसार-सागर के नौकारूप ईश्वर को शरण हम लेते हैं।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यस्तवै-
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ॥
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः ॥

ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र, और पवन दिव्य स्तोत्रों से जिसकी स्तुति करते हैं, सामवेद का गान करनेवाले मुनि,

अंग, पद, क्रम और उपनिषद् सहित वेदों से जिसका स्तवन करते हैं, योगी लोग ध्यानस्थ होकर ब्रह्ममय मन द्वारा जिसका दर्शन करते हैं और सुर तथा असुर जिसकी महिमा का पार नहीं पाते मैं उस परमात्मा को नमस्कार करता हूँ।

सामूहिक प्रार्थना

(१)

जय जय सुरनायक जन-सुख-दायक प्रनतपाल भगवंता।
गो-द्विज-हितकारी जय असुरारी सिंधु-सुता-प्रिय कंता॥
पालन सुर-धरनी अद्भुत करनी मर्म न जाने कोई।
जो सहज कृपाला दीन दयाला करहु अनुग्रह सोई॥
जय जय अविनासी सब घट बासी व्यापक परमानन्दा।
अविगत गोतीतं चरित पुनीतं माया रहित मुकुन्दा॥
जेहि लागि विरागी अति अनुरागी विगत मोहि मुनि बृंदा।
निशि वासर ध्यावहिं गुन गन गावहि जयति सच्चिदानंदा॥
जेहि सृष्टि उपाई त्रिविधि बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करहु अघारी चिन्त हमारी जानिय भगति न पूजा॥
जो भव भय-भञ्जन मुनि मन-रंजन गंजन विपति-बरूथा।
मन बच क्रम बानी छाँड़ि सयानी सरन सकल सुर यूथा॥
सारद श्रुति शेषा रिषिय असेषा जाकहँ कोउ नहिं जाना।
जेहि दीन पियारे वेद पुकारे द्रवहु सो श्री भगवाना॥

भव-वारिधि-मन्दर सब बिधि सुंदर गुन-मन्दिर सुख पुञ्जा।
मुनि सिद्धि सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद-कंजा॥

(२)

वह शक्ति हमें दो दयानिधे! कर्तव्य मार्ग पर डट जावें।
पर-सेवा पर-उपकार में हम जग-जीवन सफल बना जावें॥
हम दीन दुखी निबलों-बिकलों के सेवक बन संताप हरें।
जो हैं अटके भूले भटके उनको तारें हम तर जावें॥
छल-दम्भ, द्वेष, पाखंड, झूठ, अन्याय से निशिदिन दूर रहें।
जीवन हो शुद्ध सरल अपना शुचि प्रेम सुधा रस बरसावें॥
निज आन-कान मर्यादा का प्रभु ध्यान रहे, अभिमान रहे।
जिस देश-जाति में जन्म लिया, बलिदान उसी पर हो जावें॥

(३)

जगादो भारत को भगवान।

विहार जागे, उत्कल जागे, जागे बंग महान।
कर्नाटक, गुजरात, मराठा, सारा हिन्दुस्तान॥जगा०
काश्मीर, पंजाब, अवध, ब्रज, प्रिय नैपाल, भुटान।
महा कुसल, मालव उठ बैठे, गरजे राजस्थान॥जगा०
मैं बङ्गाली, तू मद्रासी, इसका रहे न मान।
गंगा-यमुना सम मिल जावें सब भारत सन्तान॥जगा०
बाल, वृद्ध, युवकों के मुख पर होवे मृदु-मुस्कान।
मिल करके सब सत्यभाव से करें प्रेम रस पान॥जगा०

ब्राह्मण हों तेजस्वी, त्यागी, गौतम-कपिल-समान ।
तन्मय हों मृदु स्वर से गायें सामवेद का गान ॥जगा०
क्षत्रिय हों राणाप्रताप से रण बाँके बलवान ।
स्वतंत्रता हित करें निछावर हँस हँस के निजप्रान ॥जगा०
भामासाह-समान वैश्य हों करें देशहित दान ।
शूद्र बनें रैदास भक्त से कबीर से मतिमान ॥जगा०
सावित्री, सीता, दमयन्ती, फिर से प्रगटें आन ।
दुर्गावती, लक्ष्मीबाई की चमके किरपान ॥जगा०
बालक ध्रुव प्रहलाद सदृश हों धरें तुम्हारा ध्यान ।
वीर हकीकत-सम हो जावें, धर्म-हेतु बलिदान ॥जगा०

आवाहन

व्यक्ति समाज का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। राष्ट्र का उत्थान पतन व्यक्ति के ही उत्थान पतन पर अवलम्बित है। देश का आर्थिक, राजनैतिक तथा भौगोलिक विकास तभी सम्भव है जब कि सबसे पहिले व्यक्ति का नैतिक विकास हो, नैतिक विकास ही मूल विकास है। हमने देख लिया है कि राष्ट्र की बड़ी से बड़ी महत्वपूर्ण योजनायें आध्यात्मिक एवं नैतिक बल के अभाव के कारण किस प्रकार विफल हो जाती हैं। व्यक्ति के नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास की आवश्यकता है।

अतः आध्यात्मिक प्रचार और प्रसार को प्रोत्साहित करने के लिये हम आपका आवाहन करते हैं।

रामदास मिश्र

वास्ते—अध्यात्म-प्रचार-परिषद्

ईश्वर-धर्म-नीति पर बापू के विचार |||=)
धर्म और नीति „ महात्मा गाँधी |=)
ब्रह्मचर्य के नियम ब्रह्मचर्य „ |)
हमारी सामाजिक व्यवस्था (परिचय) रामदास मिश्र 'विजय' |||)
शिक्षा विवेचन (समीक्षा) रामदास मिश्र 'विजय' |=)
सुख-शांति के उपाय (उपदेश) स्वामी नारदानन्द सरस्वती |||)
हमारी आजादी (निबन्ध) श्रीरमाकांत मिश्र एम. ए. १||)
बदलता समाज (कहानियाँ) „ „ „ १)
भैय्या केचुलबदल (हास्य) श्रीउमादत्त सारस्वत १|||)
आवाहन (कविता) रामदास मिश्र 'विजय' ||)
जब संतानें जाग उठीं (चीनी अनुवाद) वीरेन्द्र पाण्डेय ७)
करुणा देवी (सामाजिक उपन्यास) ले० श्रीसाने गुरुजी १||)
कमला „ अनुवादक पं० रूपनरायण पाण्डेय ३||)
अभिलाषा „ ले० श्रीकपिलदेव श्रीवास्तव ३)
विपुला „ „ „ ३)
अपना कौन „ श्रीसच्चिदानन्द पांडेय २||)

प्राप्ति स्थान—

हिन्दी प्रचारक मंडल

पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता

कैलासभवन, घसियारीमण्डी, लखनऊ

अध्यात्म-चेतना का अंकुर,
उर-उर में शीघ्र जगाने को ;
है हुआ आप का आवाहन,
शुभ सत्य-कर्म अपनाने को ।

अध्यात्म - प्रचार - परिषद्
केंद्रीय कार्यालय
**कैलाश भवन, घसियारी मंडी
लखनऊ**